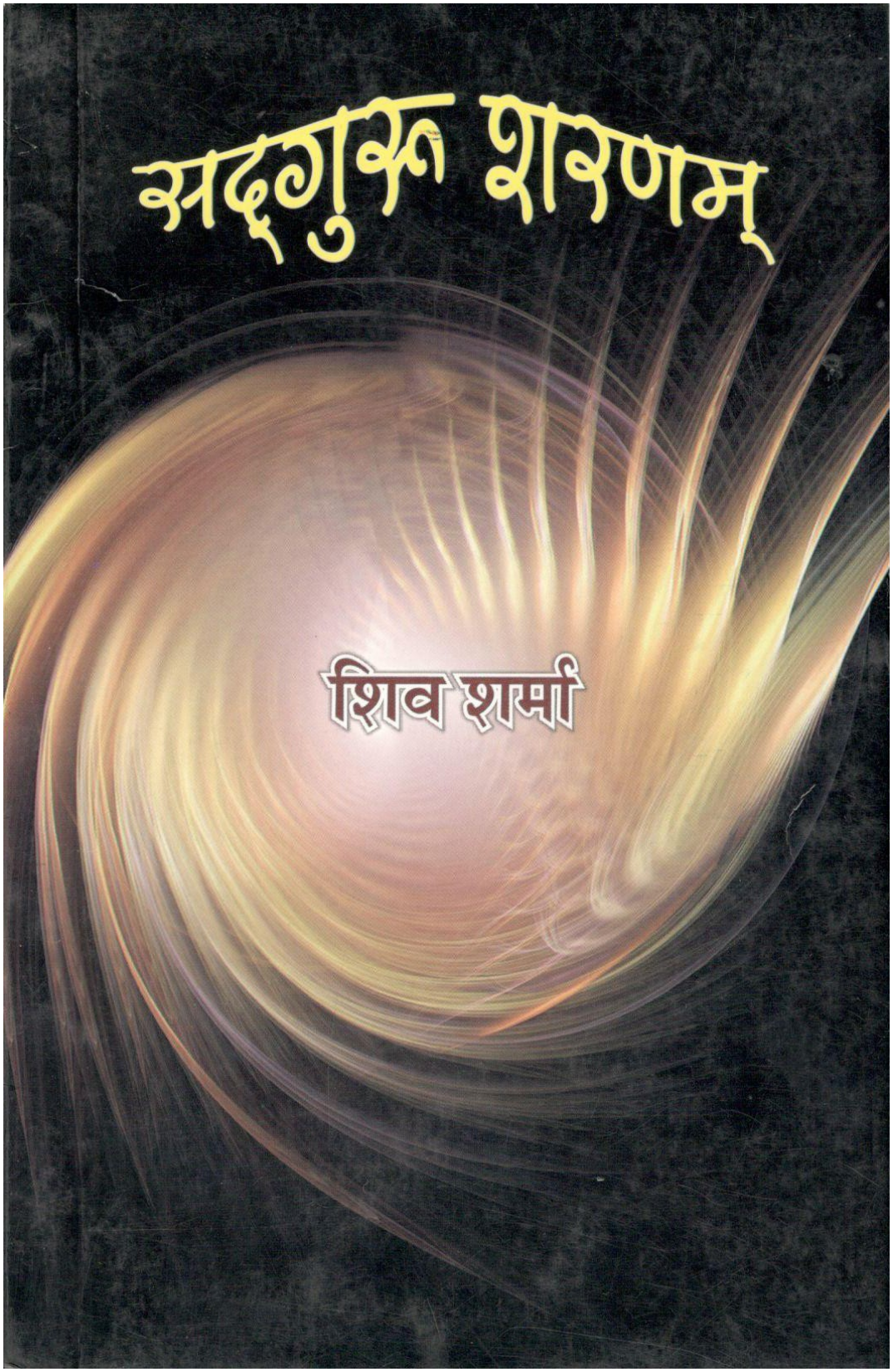
सद्गुरु शरणम्
शिव शर्मा

सद्गुरु शरणम्

शिव शर्मा

बाबा बादामशाह आध्यात्मिक शोध संस्थान
उवैसिया रूहानी सत्संग आश्रम
डूमाड़ा रोड, दौराई ग्राम, अजमेर

शीर्षक :
सद्गुरु शरणम्

लेखक :
शिव शर्मा - 217, प्रगति नगर कोटड़ा, अजमेर।
मो. : (+91) 9252270562, www.geetaandadhyatm.com

प्रकाशक :
बाबा बादाम शाह आध्यात्मिक शोध संस्थान
उवैसिया रूहानी सत्संग आश्रम,
डूमाड़ा रोड, दौराई ग्राम, अजमेर
फोन : 91-145-2680054
Website : www.urp.org.in

प्रथम संस्करण :
25 जुलाई, 2010 (गुरू पूर्णिमा)

Digitization and PDF Compilation :
Silver The Studio, Ajmer.
Mo – (+91) 9024032320
Website: - www.silverthestudio.com

समर्पण

मेरे दीक्षा-गुरू

हज़रत हरप्रसाद मिश्रा 'उवैसी' र.ह.

का यह 'कृपा-पुंज'

वर्तमान गुरू महाराज

श्री रामदत्त मिश्रा 'उवैसी'

के कर-कमलों में सादर भेंट

जिन्होंने मुझे **परम उवैसिया ज्योति**

के साक्षात् दर्शन कराए!

शिव शर्मा

अनुक्रम

1. आरम्भ से पहले.....7
2. नियति का विधान.....21
3. नाम दीक्षा-कुण्डलिनी का उठान.....27
4. यह भी कैसे भूलूँ!.....33
5. नाम को परिपक्व किया.....45
6. सूक्ष्म शरीर के दर्शन व रूहानी अनुभूतियाँ.....,.....49
7. परदा फरमाने के बाद.....55
8. कृपा-प्रवाह.....64
9. और मुझे शब्द धुन से जोड़ दिया.....71
10. कृपा निधान-रामदत्त जी महाराज.....74
11. यही सच है.....82
12. परिचय - श्री शिव शर्मा.....86

सद्गुरू देवैः नमः

यह पुस्तक मुझ पर केवल गुरू-कृपा का शब्दांकित रूप है। आप देहधारी परमात्मा थे। आपने मेरी कठोर बुद्धिवादी जमीन को अपनी नज़र से उपजाऊ बनाकर उसमें अदम्य आस्था पल्लवित की। मेरे किताबी ज्ञान को अपने कृपा-जल से धो-पौंछ कर वहाँ रूहानियत की तहरीर लिखी। मुझे मूलाधार से उठाकर आज्ञा चक्र पर बैठा दिया। सुरत को उठा कर 'धुन' से लगा दिया, धुन को शब्द से मिला दिया और जिस परम चेतना में करोड़ों सूर्य जितना जो तेजस्वी प्रकाश है उसका छोटा सा दीपक रूप मेरे भीतर झलका दिया। लोहे को सोना बना कर कह दिया-जाओ, अब अपने मालिक के लिए गहने गढ़ो।

आपकी कृपा के सैंकड़ों गुजरान मेरे भीतर घटित होते रहे हैं। इसी के साथ वर्तमान गुरू महाराज रामदत जी मिश्रा 'उवैसी' तो सावन-भादों की मेघ मालाओं की भाँति बरसे हैं। इसी 'अमोलक कृपा' के शब्दांकन के लिए मुझे क्यों प्रेरित किया है, यह तो स्वयं मालिक ही जानें। सब कुछ आपका है, आप उसे पर्दे में रखें या उजागर करें, आपकी मर्जी।

इस पुस्तक में आदि से अन्त तक एक ही भाव व्याप्त है-गुरू ही सत्य है, गुरू ही शिव है, गुरू ही सुन्दर है, गुरू ही सच्चिदानन्द है। वह करीम है, वह रहीम है, वह कबीर है और वही रसूल है। इसलिए मनुष्य जीवन की चरम सार्थकता गुरू-भक्ति में है। हम सब इस सच्चाई के दर्शन करते हुए इसे अपने जीवन में उतार सकें, मालिक ऐसी रहमत करें।

शिव शर्मा

1. आरम्भ से पहले

सूफी साधना पद्धति में इबादत का तरीका ध्यान और सुमिरन पर टिका हुआ है । ध्यान का मतलब है गुरू की मूरत अथवा छवि पर मन को केन्द्रित करना। उधर सुमिरन का शाब्दिक अर्थ है अच्छे ढंग से स्मरण करना या जाप करना। नहा-धोकर साफ वस्त्र धारण करके साफ-सुथरी जगह पर बैठकर गुरू द्वारा दिये गये मन्त्र का मन-ही-मन जाप करें। यदि आप मौन जाप नहीं कर सकते तो भँवरे की गुंजार जैसे इतना धीरे-धीरे बोलिए कि उसे आपके अलावा अन्य कोई नहीं सुन सके। यों तो जाप के चार तरीके हैं-मुँह से बोलकर, चुप रहकर कण्ठ से, मन ही मन नाम को दोहराते रह कर और बिल्कुल चुप बैठ कर भीतर नाम को सुनने की चेष्टा करना। यह थोड़ा कठिन है और निरंतर अभ्यास से ही सम्भव होता है। मौन जाप में जीभ एवं आँखें स्थिर रहनी चाहिए। बन्द आँखों में पुतलियों को हिलाइये मत, उन्हें स्थिर रखिए। जाप व ध्यान का समय एवं अवधि निश्चित कर लीजिए। यह नहीं कि जब फुर्सत मिली तब बैठ गए और मन हुआ उतनी देर बैठ लिए। अभ्यास को पकाने के लिए समय एवं अवधि का निश्चित होना जरूरी है।

शुरू में यह कठिन लगता है। मजा नहीं आता इसलिए बैठने का मन नहीं करता है। बैठ भी गए तो फटाफट उठ जाने की जल्दी रहती है। आपको ऐसा नहीं करना है। बैठना है तो बैठना है, बस। अधिक अच्छा यह है कि आप सुबह पाँच बजे बैठें-उस समय शोरगुल नहीं रहता है जिससे कि आपका ध्यान नहीं बिखरेगा। यों भी सर्योदय से पहले मन की चंचलता का अनुपात कम रहता है। इस कारण सुमिरन एवं ध्यान का अभ्यास जल्दी परिपक्व हो जाता है। लगभग चार-पाँच लाख जाप हो जाने के बाद भीतर की दशा सुधरने लगती है।

नाम अपने आप चलने लगता है। इसके बाद नाम की गूंज गूंजना शुरू हो जाती है। इसमें साधक को मजा आने लगता है और वह सुमिरन के समय की प्रतीक्षा करने लगता है।

अब बात करते हैं ध्यान की - इसके लिए सूफी सन्त समझाते हैं कि यदि आपने गुरू को साक्षात् देखा है तो उसकी मूरत पर ध्यान केन्द्रित कीजिए और यदि साक्षात् नहीं देखा है तो उसकी छवि पर मन को टिकाइये। वैसे तो किसी को भी दीक्षा देते समय गुरू साक्षात् मौजूद रहता ही है। अत: दोनों आँखों के बीच में या हृदय-स्थल पर अपने गुरू की मूरत को देखने की कोशिश कीजिए। अभ्यास करने से ऐसा हो जाता है। फिर भी, यह नहीं होता है तो गुरू की छवि को पाँच मिनिट रोज देखते रहिये। दस-पंद्रह दिन बाद आँखें बन्द करके छवि के सामने बैठिए। बन्द आँखों में यदि छवि उभरने लग जाए तो फिर खुली आँखों से छवि को देखना रोक दीजिए। अब गुरू की मूरत को ध्यान में स्थिर करने का प्रयत्न कीजिए। रोज 10-15 मिनिट तक ऐसा करने के बाद सुमिरन शुरू कीजिए। इस तरह ध्यान और सुमिरन का एक क्रम बन जाएगा। आगे चलकर सुमिरन में ही ध्यान स्थिर होने लगेगा। तत्पश्चात इस अभ्यास को ढाई घण्टे तक रोज ले जा सकें तो बहुत अच्छा होगा। इस शुरूआती दौर में बहुत अधिक धैर्य एवं संकल्प की जरूरत रहती है। संकल्प में थोड़ी सी कमी आते ही मामला बिगड़ जाता है।

एक यह बात भी याद रखिए कि इस प्रसंग में अन्य साधकों या नामधारियों से बात नहीं करे। यदि उनमें से कोई अच्छी अवस्था में पहुँचा हुआ है तो आपका मनोबल कम हो जायेगा-आप सोचते रहेंगे कि उसे तो 'ऐसा' होता है और मुझे तो कुछ भी नहीं होता। फिर मन आपको बिदकाएगा कि उस अमुक व्यक्ति पर गुरूदेव की अधिक कृपा है। ऐसा सोचते हो आप दोष के भागी हो जाएंगे और

अवचेतन मन में गुरू के प्रति श्रद्धा कम होती जाएगी। आपको पता भी नहीं चलेगा। याद रखिए, गुरू कभी भी पक्षपात नहीं करता है। किन्तु नामधारियों के प्रारब्ध वाली पृष्ठभूमि अलग-अलग होती है। यही कारण है कि किसी का ध्यान-सुमिरन शीघ्र परिपक्व हो जाता है और कई लोगों को इसमें वर्ष बीत जाते हैं। मैंने गुरूदेव के आश्रम में नामधारियों को ऐसी कुण्ठा से त्रस्त होते हुए देखा है। इसमें उन्होंने स्वयं का और अधिक नुकसान किया है; मिला कुछ नहीं। इसलिए नामधारियों के साथ तुलना कभी मत कीजिए। आप केवल अपना अभ्यास करते रहिए।

सच्चाई तो यह है कि पिछले जन्म या जन्मों में गुरू भक्ति का एक निश्चित स्तर पार कर लेने के बाद ही नये जन्म में नामदान मिलता है। लेकिन संत-फकीर बहुत दयालु होते हैं। उनके पास जो कोई भी नाम-दीक्षा के लिए पहुँच जाता है वे उसे निराश नहीं करते हैं। ध्यान रहे, आप ज्यों ही किसी सद्गुरू के पास जाते हैं, वह आपका भूत-भविष्य-वर्तमान सबकुछ देख लेता है। नाम-दान के लिए आपकी अयोग्यता को भी छुपा लेता है। आपको नाम देकर एक मौका देता है कि आप सुधर जाएँ लेकिन आप उसकी इस कृपा से अनजान रहकर उसी के विषय में शंका करने लगते हैं कि यह पक्षपात करता है, विपरीत परिस्थितयों में उसकी महानता पर संदेह करने लगते हैं और स्वयं अपेक्षित अभ्यास भी नहीं करते हैं।

ज्यादातर लोग यही सोचते है कि गुरू से नाम-दान मिलते ही उनके सब सांसारिक कष्ट दूर हो जाएंगे और उनका बेड़ा पार हो जाएगा। ऐसा सोचना मूर्खता है। जिस तरह बड़ी स्कूल में अच्छे शिक्षक के पास पहुँचने के बाद भी प्रत्येक विधार्थी को स्वयं भी मेहनत करनी पड़ती है उसी तरह सद्गुरू की शरण में आये हुए सभी नामधारियों को ध्यान और सुमिरन का नियमित अभ्यास तो

करना ही पड़ता है। साथ ही अपना दुनियावी आचरण भी सुधारना होता है। आप रात को जाप करें और दिनभर राग-द्वेष, ईर्ष्या, मन-मुटाव आदि में लगे रहें तो मालिक के दरबार में आपको स्वीकृति नहीं मिलेगी। गुरू सेवा व नाम-सुमिरन के साथ सदाचरण अनिवार्य है। खैर, इतनी बात इसलिए समझाई गई है कि आप नाम-दान की गहराई को समझ लें। या तो अच्छे कर्म और भजन-सुमिरन का पर्याप्त जमा खाता लेकर किसी गुरू की शरण में जायें या फिर गुरू ने जितनी कृपा की है उससे संतुष्ट रहे और बाहरी तथा आंतरिक पापाचार से बचते हुए ध्यान-सुमिरन करते रहें।

यह सब क्यों करें?

प्रायः लोग सवाल करते हैं कि क्या किसी गुरू की शरण में जाना जरूरी है? क्या भजन-ध्यान-सुमिरन भी अनिवार्य है? क्या यह पर्याप्त नहीं है कि मनुष्य ईमानदारी से नौकरी-व्यवसाय करे, यथा शक्ति अपने पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का पालन करे तथा जितना सम्भव हो, दूसरों की मदद करता चले?....
यह बात तो वजन दार है-यदि हम जीवनभर ऐसा करते चले तो अगला जन्म अवश्य ही हमारा सुखदायी होगा। किन्तु जीवनभर सही राह पर चलते रहना और साथ ही मन को भी शुद्ध रखना यानि मानसिक विकारों से भी दूर रहना बहुत कठिन काम है। याद रखिए, मानसिक पाप या मानसिक अनाचार से भी कर्म दोष बनते हैं जिनका फल अवश्य भुगतना पड़ता है; चाहे इस जन्म में चाहे अगले जन्मों में, इन मानसिक पापों के असर से छुटकारा पाने अथवा उसकी धार को कमजोर कर देने का सटीक उपाय है 'सुमिरन' । यहाँ प्रसंगवश थोड़ा विस्तार से समझ लें कि बुरे कर्म चार श्रेणियों में विभाजित किये गये हैं -

(अ) तन से (ब) धन से (स) वचन से (द) और मन से। (अ) जो लोग तन से पाप करते हैं - मारधाड़, तोड़फोड लूटपाट, हिंसा, अपहरण, बलात्कार आदि - इनके पाप धोने के लिए संत महात्मा उनसे तन की सेवा कराते हैं (ब) जो लोग धन के जरिये बुरे काम करते हैं वे मन्दिर, दरगाह, चर्च व गुरुद्वारे में धन से सेवा करते हैं (स) बुरे वचन बोलना, गाली बकना, किसी को अपशब्द कहना आदि वचन के पाप माने जाते हैं; ऐसे लोगों से भजन कीर्तन, गुरु वाणी का पाठ, धर्म-ग्रन्थों का पाठ आदि कराया जाता है (द) और जो लोग जाहिरी तौर पर तो कुछ गलत नहीं करते हैं लेकिन मन के विकारों से घिरे रहते हैं उनके पाप काटने के लिए मौन-जाप, सुमिरन, ध्यान-योग आदि कराया जाता है। यह सब तो गुरू कराता है। लेकिन आपको सावधानी यह रखनी है कि आप चारों तरह के और अधिक पाप नहीं करें। अपनी शारीरिक ताकत से दूसरों को दुख नही दें, धन के अहंकार में फँस कर बुरे काम नहीं करे, कटु वचन नहीं बोलें और मन के विकारों से स्वयं को बचाते रहें। कर्म-बन्धन के इतने लम्बे चौड़े जाल से पूरे जीवन बचे रहना बहुत मुश्किल है, इसलिए इबादत जरूरी है। दूसरी बात यह है कि आपने जन्म-जन्मान्तरों से एकत्र होते आ रहे गलत कर्मों के प्रारब्ध का जो बोझ लाद रखा है उसे कम करने के लिए भी भजन-सुमिरन आवश्यक है। अब कोई यह कहे कि किसी के प्रारब्ध में भी कोई कर्म-बन्धन शेष नहीं है तो फिर वह पूजा-पाठ क्यों करे या किसी गुरू की शरण में क्यों जाए? इसके दो जवाब हैं-पहला तो यह कि ऐसे जीव का पुनर्जन्म होगा ही नहीं और दूसरा यह कि पुनर्जन्म भी होगा तो वह संत-महात्मा या जन-उद्धारक व्यक्ति के रुप में एक निश्चित कल्याणकारी उद्देश्य के साथ पैदा किया जायेगा। ऐसे जीवन को परमात्मा अपनी मर्ज़ी से संसार में भेजता है जबकि सामान्य मनुष्य को कर्मफल भुगतने के लिए अनिवार्यतः बार-बार जन्म लेना पड़ता है।

पुनर्जन्म से क्यों बचें?

चलिये, ये सारी बातें सत्य हैं तो भी एक सवाल यह है कि हम बार-बार जन्म लेने से क्यों बचना चाहते हैं? अनेकानेक जन्म होते हैं तो होने दो। जन्म लो, खाओ-पीओ, अपने कर्म करो और मर जाओ; न तो पिछले जन्मों के सुख-दु:ख हमें याद हैं और न ही इस जन्म के सुख-दुख अगले जन्म में याद रहेंगे। फिर चिंता किस बात की?

जो लोग ऐसे सोचते हैं वे तो फिर कुछ भी नहीं करें - लूले-लँगड़े, अंधे-बहरे, कोढ़ी-भिखारी, कंगाल-दीन-हीन बन कर भी जो उपर्युक्त सोच रखते हैं, वे बार-बार जन्म लेते रहें, चौरासी लाख योनियों में भटकते रहें और काल की मार खाते रहें। लेकिन जरा यह तो सोचें कि चौरासी लाख योनियों में सर्वश्रेष्ठ इस मनुष्य योनी में आपको जन्म क्यों मिला है? मनुष्य जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य आखिर क्या है? क्या केवल इतना ही कि जन्म लो, रोजी-रोटी कमाओ, घर-गृहस्थी बसाओ, मोटर-बंगला अर्जित करो, तन के विविध सुख भोगो और मर जाओ? कोई भी समझदार व्यक्ति ऐसा नहीं कहेगा। वह जानता है कि इस मनुष्य जीवन का अंतिम लक्ष्य तो कुछ और ही है। यह 'कुछ और' का विचार ही हमें अध्यात्म की तरफ ले जाता है, किसी समर्थ गुरू की शरण में जाने के लिए प्रेरित करता है जो मनुष्य जीवन के परम उद्देश्य को अर्जित कर चुका है, जो इसके 'सत्य' को देख चुका है और जो मोक्ष के मुकाम तक जाकर इस दुनिया का कल्याण करने के लिए संत-महात्मा के रूप में आया है। जब आप भी किसी ऐसे समर्थ संत-महात्मा-फकीर की कृपा से इस संसार और इस जीवन के परम सत्य के दर्शन कर

लोगे तो आवागमन चक्र से मुक्ति चाहोगे तथा निश्चय कर लोगे कि मोक्ष के अलावा कुछ नहीं चाहिये और मोक्ष यानी अपुनर्जन्म।

यह मोक्ष-यात्रा बहुत कठिन व लम्बी होती है सैकड़ों जन्मों में भी पूरी नहीं होती। बस, समर्थ गुरू की कृपा से यह सुगम हो जाती है, ध्यान-सुमिरन के पक्के अभ्यास से यह राह खुल जाती है। यदि आप किसी सक्षम गुरू की शरण में पहुँच गये हैं, तो वह एक ही जन्म में या दो चार जन्मों में ही आपको पार लगा देगा। इसलिए गुरू की शरण में जाओ, इबादत करो, स्वयं को सुमिरन में लगाओ।

बार-बार जन्म क्यों लेना पड़ता है?

अब यह भी एक सवाल है कि हमें बार-बार जन्म क्यों लेना पड़ता है? क्या पिछले कर्मों का फल इस एक ही जन्म में पूरा नहीं होता?

वस्तुत: आपका वर्तमान जन्म पिछले कई जन्मों की श्रृंखला का परिणाम है और आगे भी ये जन्म तब तक चलते रहेंगे जब तक कि आपके सारे संस्कार समाप्त नहीं हो जाते हैं। जन्म-जन्मान्तर का यह सारा खेल संस्कारों का है। ये संस्कार स्वयं आप ही बनाते हैं और फिर उनका अच्छा-बुरा फल भोगते रहते हैं। संस्कार वे कर्माणु हैं जो आपके चित्त में संचित होते रहते हैं । चित्त आपके सूक्ष्म शरीर का ही एक अंश होता है जो सूक्ष्म ज्ञानेंद्रियों, सूक्ष्म कर्मेन्द्रियों व अंत:करण से मिलकर बनता है। मृत्यु होते ही ये सब जीवात्मा के साथ एक चमकीली अण्डाकृति के रूप में शरीर छोड़कर निकल जाते हैं।

खैर, बात संस्कारों की चल रही है। आप समझ लीजिए कि हम जो कुछ भी कार्य करते हैं और जैसा कुछ सोचते रहते हैं उसके संस्कार हाथों-हाथ बनते चलते हैं। ये संस्कार अति सूक्ष्म कर्माणु रुप होते हैं। आप यह तो जानते ही होंगे कि हम जो कुछ बोलते हैं उसकी तरंगें अंतरिक्ष में अनन्त काल तक रहती है,

किन्तु हमें दिखती नहीं हैं। ऐसे ही हम मन में जैसा सोचते है उसकी भी अति सूक्ष्म तरंगे बनती हैं जिन्हे अति संवेदनशील कम्प्यूटर पकड़ लेते हैं तथा स्क्रीन पर प्रदर्शित कर देते हैं। जब मशीन ही हमारे सोचे हुए का "प्रिंट" बना देती है तो जरा सोचिए कि हमारा चित्त जो इससे लाख गुना अधिक चेतन व संवेदनशील होता है। यही कारण है कि वहाँ हमारी प्रत्येक गतिविधि संस्कार रुप में एकत्र होती रहती हैं। मृत्यु के बाद परमात्मा की प्रयोगशाला में आपके ये संस्कार जीवात्मा की स्क्रीन पर प्रदर्शित किये जाते हैं। इनके साथ आपके अनेकानेक पूर्वजन्मों के बाकी चले आ रहे संस्कारों को मिलाकर आपके अगले जन्म का मास्टर प्लान तैयार किया जाता है। उसमें यह देखा जाता है कि आपको कितने वर्ष की उम्र दी जाए और उसमें कितने संस्कारों का भुगतान हो जाएगा।

अगला जन्म लेते ही आपके साथ पुनः कर्म सिद्धान्त लागू हो जाता है। इसमें तीन प्रकार के कर्म होते है-क्रियमान, संचीयमान और प्रारब्ध। क्रियमान कर्मों का फल इसी जन्म में भुगतना पड़ता है, जैसे-मारपीट की और जेल जाना पड़ा; मेहनत से पढ़ाई की तो प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो गए। दूसरा संचीयमान कर्म यानी वे कर्म जो आपके खाते में एकत्र होते जाते हैं और उनका परिणाम अगले जन्म में भुगतना पड़ता है । जैसे दान-पुण्य, भजन-कीर्तन व कानून और समाज से छिप कर किये गए बुरे काम। सद्गुरू चाहे तो बुरे संचीयमान कर्मों को सूक्ष्म तौर पर यहीं भुगता कर समाप्त कर सकता है। तीसरा प्रारब्ध अर्थात् पिछले जन्मों के वे कर्म जिनका अच्छा बुरा फल आपको इस जन्म में भोगना है। धरती के समस्त मनुष्यों पर यह कर्म-सिद्धान्त लागू है। ऊपर 'समष्टि महत्' से कर्माणु रुप संस्कारों की बरसात होती रहती है। अपने-अपने भाग के संस्कार हमारे अंत:करण में स्थित चित्त ग्रहण करता रहता है। साथ ही वह संचीयमान कर्मों के

संस्कार ऊपर भेजता रहता है। मेरे गुरूदेव ने ऐसा ही समझाया और शास्त्र भी इसे पुष्ट करते हैं। गुरू कृपा के बिना मनुष्य को सैकड़ों जन्मों में भी इन संस्कारों से छुटकारा नहीं मिलता है और बार-बार जन्म लेन का सिलसिला चलता रहता है।

तो फिर क्या करें?

हाँ, कुल मिलाकर यही बात उठती है कि हम करें तो क्या करें? हमारे जीवन पर प्रारब्ध का इतना तगड़ा नियन्त्रण है तो फिर हम क्या करें? जाने कितने जन्मों के संचित संस्कारों को कैसे काटें? यह एक जीवन सामान्य ढंग से व्यतीत करने में ही पसीने छूटते रहते हैं तो फिर पिछले जन्मों के इस बोझ से कैसे पार पाएँ? यही अवशता, लाचारी और विवशता हमें किसी समर्थ गुरू की शरण में जाने की प्रेरणा देती है। मेरे गुरूदेव समझाते थे कि सद्गुरू की शरण में आया हुआ जीव अधिकतम चार जन्मों में पार लग जाता है। यदि वह देह रहते हुए इबादत नहीं करता है तो मृत्यु के बाद उसकी रूह को सूक्ष्म-मण्डलों में किसी मुकाम पर स्थिर करके साधना कराई जाती है; वहाँ उसे भूखा-प्यासा रहते हुए सुमिरन करना पड़ता है। फिर उसे जन्म दिया जाता है और पुनः ऊपर ऐसे ही इबादत कराई जाती है। यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक कि उसके संस्कार नहीं कट जाते। देह त्याग के बाद गुरू सतलोक में सूक्ष्म शरीर से सदैव विद्यमान रहता है और अपने प्रत्येक मुरीद का ध्यान रखता है। वह नाम-दान के वक्त ही अपने मुरीद की रूह को काल से छुड़ा कर किसी मुकाम पर बाँध देता है। इसलिए भी मुरीद की रूह पर हर क्षण उसकी नज़र रहती है।

तो बात फिर वही कि गुरू कृपा से ही जन्म-मरण का फन्दा कट सकता है।

अर्थात् सद्गुरू की शरण जरूरी है?

हाँ, सच्ची बात तो यही है फिर भी आपकी जिज्ञासा शान्त करने के लिए थोड़ा सा अलग हट कर विचार करते हैं। देखिये, परीक्षा में स्वयंपाठी विद्यार्थी भी उत्तीर्ण होते हैं किन्तु उन्हें अधिक परिश्रम करना पड़ता है; वे बार-बार अटकते हैं और सवाल समझने के लिए किसी न किसी के पास जाते हैं फिर भी वे टॉपर नहीं बनते; कभी-कभार लाखों में कोई एक ऐसा कमाल कर पाता है। इसी तरह साधना की राह पर भी जो अकेले दम पर आगे चलते हैं उनका मार्ग लम्बा और कठिनाइयों से भरा हुआ रहता है। यदि इच्छा शक्ति मजबूत हो, धैर्य हो, बैठक सधी हुई हो, प्रारब्ध अनुकूल हो और मालिक की कृपा दृष्टि हो तो ही ऐसा साधक कामयाब हो सकता है। जब उसका अन्त:करण शुद्ध हो जाता है तो फिर वह स्वयं ही अपना गुरू हो जाता है। हमारे भीतर जो जीवात्मा है वह भी तो परमात्म रूप है; बस उस पर संस्कार जनित अज्ञान का आवरण लिपटा हुआ है। यदि कोई साधक अपनी इबादत के सहारे उस आवरण को भेद कर अपने शुद्ध आत्म रूप को देख ले तो वह आत्मज्ञानी हो जाता है। फिर भी रूहानियत के जो उच्चतर व गुप्त मुकाम हैं वहाँ तक उसकी पहुँच नहीं हो सकती है; वहाँ तो कोई समर्थ गुरू ही ले जा सकता है क्योंकि वह स्वयं वहाँ जा कर आ चुका है। संतमत में जो अगम, अलख व अनामी लोक हैं तथा नक्शबंदियां फकीरों के अनुसार अनामी से भी ऊपर जो तीन गुप्त लोक हैं वहाँ केवल अपने बल-बूते पर जाना असम्भव बताया गया है।

अब यदि जीव को सद्गुरु की शरण मिल जाती है तो वह कई तरह से मदद करता है- (i) इस जीवन में उसका आचरण सुधार देता है जिससे प्रतिकूल संचीयमान

कर्मों को वह काट भी देता है (ii) उसके प्रारब्ध जनित भोगों को सूक्ष्म करके भुगता देता है (iii) अपनी तवज्जह से या शक्तिपात के ज़रिये उसकी रूह अथवा सुरत को एक ऊँचे मुकाम आज्ञा चक्र पर बैठा देता है। इससे साधक को सुमिरन में रस आने लगता है और वह अपना अभ्यास बढ़ाता जाता है (iv) आंतरिक मुकामों की चढ़ाई में वह उसकी मदद करता है (v) मन-बुद्धि को स्थिर करने, चित्त को शुद्ध करने और अहंकार के निवारण में वह उसकी सहायता करता रहता है (vi) जीव के अनेक दुनियावी काम गुरू की कृपा से सहजता पूर्वक होते रहते हैं जिसके कारण उसकी प्रवृत्ति सांसारिकता में ज्यादा नहीं भटकती तथा वह ध्यान सुमिरन में लगा रहता है (vii) रूह की आन्तरिक चढ़ाई के दौरान बीच में जो सिद्धियों के पड़ाव आते हैं, उन पर वह साधक को अटकने नहीं देता है (viii) यदि देह रहते उसकी इबादत का काम पूरा नहीं हो पाता है तो वह मृत्यु के बाद उसकी रूह को किसी ऊँचे मुकाम पर स्थिर करके उससे इबादत कराता है (ix) समर्थ गुरू की कृपा के फलस्वरूप अदृश्य दुष्टात्माएँ भी साधक की इबादत को बाधित नहीं कर पाती हैं (x) सद्गुरू समय-समय पर अपने मुरीद को सिद्धमंत्र भी देता रहता है जिनसे उसकी रूहानी चढ़ाई शीघ्रता से पूरी होती जाती है।

गुरू की ऐसी कृपा को एक साधारण उदाहरण से समझ लीजिए-अपने प्रिय विद्यार्थी को शिक्षक पाँच सवाल बता देता है जो पर्चे में आ जाते हैं और वह विद्यार्थी विशेष योग्यता के साथ परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता है इसलिए गुरू का शरण में जाओ एवं उसके प्रिय शिष्य बनो। कक्षा में मात्र प्रवेश हो जाने से ही पूरी बात नहीं बनती है। हमारे गुरूदेव हजरत हरप्रसाद मिश्रा 'उवैसी' र.अ. के मुर्शिद बाबा बादामशाह कलंदर र.अ. के अनेक मुरीद थे लेकिन उन्होंने कामिल फकीर तो हमारे गुरू साहब को ही बनाया। श्री रामकृष्ण परमहंस ने जितना कुछ

विवेकानन्द जी को दिया उतना अन्य कोई शिष्य नहीं ले सका था। उस्मान हारून साहब के सैकड़ों मुरीद थे लेकिन उन्होंने मोईनुद्दीन चिश्ती साहब को ही विश्व विख्यात संत बनाया। अत: इस बात को गाँठ बांध लीजिए कि गुरू सेवा से ही बेड़ा पार होता है।

यह सब मेरे साथ गुजरा है, हर दिन और हर पल। मैंने गुरूदेव की कृपा से इस सच्चाई का स्वयं के भीतर प्रत्यक्षीकरण किया है कि जीवन में समर्थ गुरु ही सब कुछ है, हम कुछ नहीं। जो लोग मनुष्य जीवन के सत्य तक पहुँचना चाहते हैं उन्हें पहले यह बात स्वयं के भीतर उतारनी पड़ेगी कि समर्थ गुरू देहधारी परमात्मा होता है, उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं। आप किसी संत महात्मा के साथ दिल का नाता जोड़ ले, तभी यह समझ पाएँगे।

लोक-लोकान्तर

इस संदर्भ में यह भी समझ लें कि ब्रह्माण्ड में इस धरती जैसी लगभग एक हजार पृथ्वियाँ हैं। गुरूदेव बताते थे कि जिस तरह हमारी पृथ्वी के सृष्टा चार मुँह वाले ब्रह्मा जी हैं, इसी तरह एक हजार मुँह वाले ब्रह्मा की सृष्टि भी ब्रह्मांड में है। इन समस्त पृथ्वियों पर जन्म लेने वाली आत्माएँ इधर-उधर आती-जाती रहती हैं। ये सब स्थूल पृथ्वियाँ अथवा लोक हैं। इनके अलावा आकाश में अनगिनत सूक्ष्म लोक भी होते हैं। नोबल पुरस्कार विजेता विख्यात भौतिक वैज्ञानिक आइन्सटीन ने भी स्वीकार किया था कि प्रत्येक स्थूल पदार्थ का एक सूक्ष्म रूप (प्रति द्रव्य) भी होता है। उन्होंने कहा कि जो स्थूल ब्रह्माण्ड हम देखते हैं उसका एक प्रति ब्रह्माण्ड भी है। इस तरह विज्ञान भी सूक्ष्म ग्रहों या सूक्ष्म लोकों की बात स्वीकार करता है। रूहानियत के अनुसार ब्रह्माण्ड में स्थूल जगत, सूक्ष्म लोक, कारण लोक, महाकारण जगत और निर्वाण लोक का अस्तित्व है। सूक्ष्म लोक के तीन

स्तर हैं प्रेत लोक, पितृलोक और स्वर्ग लोक। ये सब वे सूक्ष्म मंडल हैं जहाँ अंगूठे जितने से आकार में सूक्ष्म जीव रहते हैं। प्रेत मंडल में अंधेरा ही अंधेरा छाया हुआ रहता है। पितृ-लोक में थोड़ा उजाला और वातावरण संतोषजनक रहता है। जिसे हम स्वर्ग लोक कहते हैं वे ऐसे सूक्ष्म मंडल हैं जहाँ उजाला भरा रहता है और इच्छा मात्र से तृप्ति हो जाया करती है। वहाँ सुख-भोग की सारी वस्तुएँ सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहती हैं और सदैव मौसम सुहावना रहता है। यह मंडल तेजस् प्रधान माना गया है जबकि प्रेत मंडल में तमस का प्राधान्य रहता है। पितृ मंडल में मध्यवर्ती स्थिति रहती है। इन सूक्ष्म मंडलों में ही सबसे ऊपर वैष्णव धारणा वाले वैकुण्ठ की स्थिति मानी गई है। लेकिन कुछ विद्वान वैकुण्ठ को सर्वोपरि लोक बताते हैं। इन सूक्ष्म मंडलों में सूक्ष्म जीव परस्पर विचरण करते रहते हैं; उनकी गति प्रकाश जितनी तेज रहती है। यहाँ रहने वाले जीवों का एक निश्चित समय के बाद पुनर्जन्म होता है और कुछ ऐसे जीव भी होते हैं जो यहाँ भी इबादत करते हुये कारण जगत में चले जाते हैं । सूक्ष्म लोक से ऊपर कारण जगत होता है। यहाँ अति उच्च स्तर की, दिव्य आत्माएँ निवास करती हैं। इसे आनन्दमय कोश की स्थिति माना गया है। यहीं से परमात्मा कुछ दिव्यात्माओं को मानव जाति का कल्याण करने के लिये संत-महात्मा के रूप में धरती पर भेजता रहता है। हमारे संतमत का सत् लोक इसी कारण जगत में बताया जाता है। यहाँ इतना तेज प्रकाश रहता है कि उसे देहधारी मनुष्य स्थूल आँखों से नहीं देख सकता-इस तेज़ प्रकाश से चुंधिया कर आँखें बंद हो जाएंगी। संत-महात्मा अपनी दिव्य दृष्टि से ही इस तेज़ प्रकाश को सहन पर पाते हैं। इसके ऊपर महाकारण जगत होता है जहाँ जीवात्माएँ अणु रूप में रहती हैं। बहुत कम साधक ही यहाँ तक पहुँच पाते हैं। यहाँ हर पल परमात्मा का साहचर्य

रहता है । यहाँ करोड़ों सूर्य चमकते रहते हैं। यहाँ समय और काल (टाइम एण्ड स्पेस) की बाधा समाप्त हो जाती है । इसके ऊपर होता है निर्वाण लोक यानि महाशून्य अर्थात् - प्रकृति और पुरूष की साम्य अवस्था, नाद और बिन्दु की साम्य अवस्था। यहाँ पहुँची हुई आत्मा का पुनर्जन्म नहीं होता है, वह परमात्मा के महाशून्य में मिलकर एक हो जाती है।

वस्तुत: यह बहुत लम्बा-चौड़ा जाल है जिसे कामिल फकीर, पूर्ण योगी और सिद्ध जन ही समझ सकते हैं। गुरूदेव ने मुझे जो कुछ समझाया उसकी तरफ मैं तो केवल एक इशारा ही कर सका हूँ। हम इस जन्म में इतनी इबादत कर लें कि सूक्ष्म लोक के उच्च स्तर तक पहुँच सकें और वहाँ कारण जगत वाली किसी दिव्य आत्मा की हमें कृपा मिल सके तो इतना ही पर्याप्त है। सद्गुरू के चरणों में बैठकर यह सबकुछ समझ लेने के बाद हमें एक ऊँचा लक्ष्य तो निर्धारित करना ही चाहिये। आप्त पुरुषों ने ऊपर की दुनिया का यह जो नजारा शास्त्रों के माध्यम से और गुरू वाणी के जरिये स्पष्ट किया है उसे भी आप यदि कल्पित मानकर छोड़ दें तो यह आपकी मर्जी है। जब तक जीवन है तब तक इस सच्चाई को यदि आप याद रखें तो अवश्य ही आपको सही रास्ता मिलेगा। इसके साथ यदि गुरू कृपा जुड़ जाये तो फिर मालिक अवश्य ही ऐसे साधकों का कल्याण करता है।

2. नियति का विधान

किसी संत से आपकी मुलाकात यों ही नहीं हो जाती है। आपका जैसा प्रारब्ध है आप वैसे ही संत-महात्मा की शरण में पहुँचेंगे। इसके लिए भी नियति ने जो समय तय कर रखा है, तभी ऐसा सुयोग बनेगा। मैं अजमेर में रहते हुए भी पचास वर्ष की उम्र तक गुरूदेव के सम्पर्क में नहीं आ सका। बाबा हुजूर का नाम सुन रखा था लेकिन उनके स्थान पर नहीं जा सका। एक स्थानीय दैनिक अखबार में अजमेर का इतिहास लगातार एक साल तक लिखता रहा। तारागढ़ व हैप्पी वैली की दसों बार यात्रा की, शम्भू नाथजी की टेकरी के बारे में भी लिखा, पर हुजूर के स्थान तक नहीं जा सका। यह 1973-74 ई. की बात है। उधर यह भी सुनता रहता था कि रामगंज मे कोई पिताजी हैं जो रूहानी ताकत से सम्पन्न हैं। प्रांतीय स्तर के एक अखबार में मैने रामगंज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ उस इलाके पर फीचर लिखा था, लेकिन उस वक्त (सन् 1996) भी गुरूदेव तक नहीं पहुँच सका। जबकि इनका निवास रामगंज में ही था। एक और मजेदार बात यह कि मैं गफूर अली बाबा, गुलाब शाह बाबा, टाट शाह, कालूनाथ जी, सम्पत नाथ जी, लीला शाह बाबा, मनोहर दास जी आदि अजमेर के संत फकीरों की चर्चाएँ सनुता रहता था लेकिन उवैसिया सिलसिले के इन दो कामिल फकीरों की तरफ अपनी अध्ययन एवं लेखन प्रवृति को नहीं मोड़ सका। यह प्रमाणित करता है कि समय से पहले आप किसी भी कामिल फकीर तक नहीं पहुँच सकते।

वे लोग भाग्यशाली होते हैं जिनकी कोई फकीर प्रतीक्षा करता है। हाँ, ऐसा भी होता है। सामान्यत: तो मुरीद को मुर्शिद की तलाश रहती है। लेकिन

अपवाद के तौर पर गुरू भी योग्य शिष्य की राह देखता रहता है। विवेकानन्द ऐसे ही संत थे जिनकी राह रामकृष्ण परमहंस देख रहे थे। हमारे सिलसिले के एक कलन्दर हज़रत निजामुल हक साहब जब पहली बार अपने मुर्शिद हज़रत गुल मोहम्मद खाँ साहब की शरण में पहुंचे तो उन्हें देखते ही गुरु साहब बोले-'लो भाई! आ गया लेने वाला' इसका अर्थ यह कि वे निजामुल हक साहब का इंतजार कर रहे थे। इसी तरह श्री युक्तेश्वर गिरी महाशय भी योगानन्द जी की राह देख रहे थे और नाम-दीक्षा के वक्त ही उन्हें रोशन कर दिया था। डॉ. चतुर्भुज सहाय के साथ भी ऐसा ही हुआ, ठाकुर रामचन्द्र जी ने उन्हें एक ही बार में आनन्दमय कोश तक की यात्रा करा दी थी। यहाँ एक बात याद रखनी है कि ऐसे लोग जन्मजात फकीर होते हैं। जाने कितने जन्मों की लगातार तपस्या के बाद उन्हें ऐसा भाग्य मिलता है।

चलिए, वापस अपनी मुख्य बात पर आते हैं। मैं 1970 से 2000 ई. तक यानी तीस वर्ष तक चाह कर भी गुरूदेव की शरण में नहीं पहुँच सका। हमारे मकान मालिक के घर पर आप एक बार भोजन करने आए थे। मुझसे केवल बीस कदम दूरी पर थे, लेकिन तब भी दर्शन का संयोग नहीं बना; और जब नियति का विधान प्रतिफलित होने का दिन आया तो बात सहज ही बन गई। आपके एक मुरीद अरविन्द गर्ग ने मुझे बाबा बादामशाह साहब की दरगाह पर अखबार के लिए फीचर लिखने को कहा। इस सिलसिले में वह मझे गुरुदेव के पास ले गया। प्रथम दर्शन हए, बातचीत हुई और फिर वापसी के लिए मैं ज्यों ही उठा, आप बोले 'शिवजी आते रहना।' मेरी प्रतिक्रिया थी 'आप बुलाएँगे तो अवश्य आऊँगा'

फकीर जिसे चाहता है, उसकी राह भी स्वयं बना देता है। मेरे भीतर आपने दो प्रेरणाओं का स्फुरण किया (अ) आश्रम में शोध संस्थान की स्थापना और (ब)

'पूज्य गुरुदेव' पुस्तक का लेखन कार्य ये दोनों इच्छाएँ मैने आपके सामने व्यक्त की। आपने मुस्कराते हुए स्वीकृति दे दी। इस तरह आपकी शरण में नियमित आने-जाने का जरिया बन गया। अगले तीन माह में ये दोनों काम हो गए और इस दौरान मैं आपके कृपा जल से भीतर ही भीतर तर-बतर होता रहा। मेरी पोस्टिंग राजकीय महाविद्यालय, देवली के हिन्दी विभाग में थी। जम कर पढ़ने और दबा कर लिखते रहने का शौक था। मैं प्रति रविवार एवं बीच-बीच की छुट्टियों में गुरूदेव के पास जाने लगा। वहाँ ध्यान-कक्ष में आध्यात्मिक विषयों पर दो-दो घण्टे बोलता रहता, गुरूदेव के साथ सवाल जवाब करता। वहाँ बैठे रहने वाले अन्य लोगों की तरफ तो मेरा ध्यान ही नहीं जाता था। प्राय: गुरूदेव भोजन करा कर भेजते थे। वर्तमान में गुरूपद पर विराजमान श्री रामदत्त जी महाराज उन दिनों हमारे मालिक के जाँनशी थे। आप चुपचाप देखते रहते थे कि गुरूदेव किस चतुराई से मेरा 'ब्रेन वॉश' करते जा रहे थे। लगभग डेढ़ साल तक यही सिलसिला चलता रहा। मैं अपनी विद्वता झाड़ता रहा और आप मेरी थाह लेते रहे।

एक दिन सुबह दस-ग्यारह बजे मैं आपके श्री चरणों में बैठा था। साथ में आपके गुरू भाई आर.सी. शर्मा व कुछ अन्य लोग भी बैठे थे; श्री राम भैय्या अपनी जगह विराजमान थे। तभी मुझ पर नशा छाने लगा। पहले तो शक हुआ कि चक्कर आ रहे हैं लेकिन भीतर जब मस्ती चढ़ने लगी तो समझ गया कि गुरूदेव ने अपनी नजर का निक्षेप किया है यानी तवज्जह (कृपा) की एक धारा बरसा दी है। एक मीठी-मीठी मस्ती छा गई। इसका डेढ-दो घण्टे तक मजा आता रहा। फिर तो इस आनन्द का चस्का लग गया। जब भी अजमेर आता, इस खुमारी का आनन्द लेने आपके पास पहुँच जाता। अब बोलना बन्द। दो घण्टे बैठे-बैठे झूमता रहता। कभी-कभार आप नीचे उतार कर बीच-बीच में किसी विषय पर

कुछ बुलवा देते। देवली में हालत और भी विचित्र रहने लगी-मुझे लगता कि कालेज जाते समय आप भी मेरे साथ चल रहे हैं। स्टॉफ रूम में आप भी बैठे हैं, लाईब्रेरी में पुस्तक ढूँढने में मेरी मदद कर रहे हैं। मैं जहाँ हाथ रखता वहीं मेरी जरूरत वाली किताब मिल जाती। दर्शनशास्त्र की किताब भूगोल की अलमारी में और हिन्दी का ग्रन्थ अर्थशास्त्र की पुस्तकों के बीच दुबका हुआ मिलता। मैं काम करके चार-चार पुस्तकों को एक साथ अलमारी के कोने में रखता जाने कौन पीछे से उन्हें कहीं दूसरी शेल्फ में छिपा कर रख देता। आप मुझे इसका आभास करा देते और मेरा हाथ उन पुस्तकों पर रख देते। 'पुष्कर अध्यात्म और इतिहास' तथा 'दशानन चरित' ये दो पुस्तकें लिखने के दौरान ऐसा बीसों बार हुआ। कभी-कभी लगता था जैसे कक्षा में मुझमें आवेशित होकर गुरूदेव पढ़ा रहे है। उस वक्त कक्षा का वातावरण नूरानी हो जाता था और विद्यार्थियों के चेहरों से अनूठी तृप्ति झरती हुई प्रतीत होती थी। कक्षा से बाहर आने के बाद मेरी मनोदशा मस्ताने जैसी हो जाती थी। रात को इबादत के वक्त सहज ही कितनी-कितनी देर के लिए गुम हो जाता, फिर होश आने पर देखता कि आधी रात बीत गई है।

एक बार जेब में दो सौ रुपये थे। मुझे अजमेर आना था। टिकिट खिड़की पर खड़े हुए जेब में हाथ डाला तो कलेजा धक्क रह गया-पैसे कहीं गिर गए। मन उदास हो गया कि अब क्या करूँ? किससे मागूँ किराया? तभी कोई शक्ति मुझे अपने कमरे पर जबरन ले गई। फिर कोई भीतर बोला-पलंग के पिछले दाहिने किनारे पर देखो-आश्चर्य? वे ही दो सौ रूपये वहाँ पड़े थे। एक बार स्टाफ रूम वाली अलमारी की चाबी, अलमारी में ही लगी रह गई थी। याद आने पर वहाँ गया तो तब तक किसी ने निकाल ली थी। मेरे एक अन्य साथी लेक्चरर ने आसपास की जगह छान मारी किन्तु चाबी नहीं मिली। फिर भीतर आवाज़ आई-चाबी कल यहीं मिल जाएगी चिंता मत करो। जिसने यह खुराफात की थी

उसका नाम भी भीतर कौंध गया। दूसरे दिन चाबी मेरी रैक के नीचे ही पड़ी हुई मिल गई। इस तरह के कई अजूबे मेरे साथ घटने लगे और गुरुदेव की आध्यात्मिक सामर्थ्य के प्रति मेरा विश्वास बढ़ता गया। मेरे भीतर यह बात जम गई कि मेरे पल पल की गतिविधि पर गुरुदेव की नज़र है।

इस समय तक मुझे नाम दीक्षा नहीं मिली थी। मैं पहले की तरह 'ओम नमः शिवाय' का जाप ही किया करता था। इधर आश्रम में मेरे साथ ऐसा ही होता रहता था-शोध-संस्थान कक्ष में हम कुछ लोग किसी आध्यात्मिक विषय पर चर्चा कर रहे होते कि तभी कोई आकर एक पुस्तक दे जाता और कहता कि गुरूदेव ने आपके पास भिजवाई है। पुस्तक में लगी हुई कागज की स्लिप वाले पेज को मैं पढ़ता तो विस्मित रह जाता, वहाँ उसी प्रश्न का जवाब होता था जिस पर हम चर्चा कर रहे थे। मैं आश्रम जाने के लिए घर से निकलता और उधर आप ध्यान कक्ष में उपस्थित साधकों को बता देते कि थोड़ी देर में शिवजी भी पहुँचने वाले हैं। वे लोग मुझे बताते और मैं समझता जाता कि आपकी दृष्टि सर्व व्यापक है।

एक बार हुजूर के स्थान पर प्रसादी थी। मुझे जानकारी नहीं थी। मैं अपनी पत्नी मधु शर्मा के साथ आश्रम गया। वहाँ ज्ञात हआ कि मालिक तो हुजूर की दरगाह में हैं। किसी अज्ञात प्रेरणा से हम भी वहाँ चले गये। भाई लोग प्रसादी ले रहे थे। हमें भी कहा गया किन्तु मैंने मन में निश्चय किया कि आज तो गुरूदेव स्वयं बुलाएँगे तभी प्रसादी लूँगा। इसके एक मिनट बाद ही श्री निर्मल मेरे पास आकार बोले-आपको पिताजी बुला रहे हैं। मालिक ने तब अपने पास बैठा कर हमें भोजन कराया। बीच-बीच में अपनी थाली से बाटी व चूरमा देते रहे। मैं तो उस दिन निहाल हो गया था।

यहाँ मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ कि सद्गुरू कितना उदार होता है तथा किस तरह चुपचाप कृपा बरसाता रहता है। मैं वाकई मूर्ख था, सब कुछ जानकर भी जिद किये बैठा था कि आप बुलाकर कहेंगे तभी नाम-दीक्षा लूँगा। एक बार उन्हीं दिनों आपने अपने मुरीदों को कहा कि वे लिखकर दें कि उनके पास क्यों आते हैं? मैने लिखकर यह दिया (अ) मैं आपके व्यक्तित्व का अध्ययन करना चाहता हूँ और (ब) अध्यात्म को विज्ञान की तरह स्वयं करके देखना चाहता हूँ। आपने फरमाया-शिवजी! केवल तुमने लिखकर दिया है। तुम जो सोचते हो, वह अध्येता की दृष्टि से अच्छी बात है लेकिन जब रूहानियत को जान लोगे तो चुप हो जाओगे। मैं ग्रीष्मावकाश के दौरान लगभग नियमित आता था। बकरा मण्डी तक टैम्पो से आता फिर पैदल चलकर आश्रम पहुँचता था। मई जून की चिलचिलाती दोपहर में भी मुझे ठण्डक महसूस होती थी। आज यह सब याद करके गद्गद् हो जाता हूँ और अपनी नासमझी पर चुपचाप रोता हूँ। शायद ही कभी ऐसा हुआ हो कि आश्रम से लौटते वक्त मुझे बकरामण्डी से कोई साधन नहीं मिला हो। अक्सर तो मैं देखता था कि टैम्पो या ट्रोला वहाँ मानो मेरा ही इन्तजार कर रहा था।

फिर भी नाम दीक्षा की घड़ी अभी तक नहीं आई थी।

3. नाम दीक्षा-कुण्डलिनी का उठान

एक दिन मैं श्री आर. सी. शर्मा को उनकी पुस्तक 'भारत के प्रमुख सूफी संत' का काम करा रहा था। श्री तेजपाल सिंह चौहान भी पास में बैठे थे। चाय पीने के लिए मैंने यह काम थोड़ी देर रोक और बातें करने लगे। पता नहीं किस बात पर मैं बोला कि अभी तक मैने नाम-दीक्षा नहीं ली है। सुनकर वे दोनों चौंके-यह कैसे सकता है? यहाँ तो सभी यह मानते हैं कि शिवजी को नाम देकर पिताजी ने तेज़ी से आगे बढ़ाया है। तब मैंने मन की बात बताई जिसे सुनकर श्री आर.सी.शर्मा ने कहा-अपनी बेवकूफी छोड़ो और अभी के अभी जाकर नाम-दान के लिए निवेदन करो। यह सुनते ही मैं अविलम्ब उठ कर गुरूदेव के पास गया तथा नाम-दीक्षा के लिए निवेदन किया। पिताजी दो मिनट तक मौन रहे, फिर बोले-अच्छा. परसों फूल-माला प्रसाद लेकर सपत्नी सुबह नौ बजे आ जाना। मैं समझता हूँ कि गुरूदेव ने देख लिया था कि मेरे नाम-दान की घड़ी आ गई है और इसीलिए शर्मा साहब को निमित्त बनाते हुए उन्होंने मेरे भीतर इस कामना का स्फुरण किया।

गुरूवार की सुबह मेरी नाम-दीक्षा सम्पन्न हई। आपने वही नाम दिया जिसका जाप करने के लिए एक साल पहले ही आप मौखिक तौर पर कह चुके थे। मतलब यह कि पहले तो मेरे दिमाग में भरे हुए किताबी ज्ञान के अहम् को साफ किया, फिर साल भर तक मुझसे नाम जाप कराते हुए दीक्षा के लिये उपयुक्त भूमिका बनाई और उसके बाद दीक्षा संस्कार पूर्ण किया।

नाम-दीक्षा के बाद आपने हमें ध्यान कक्ष में बैठा दिया। थोड़ी देर बाद ही मैंने महसूस किया कि मूलाधार चक्र से फनफनाते हुए एक शक्तिधारा ऊपर उठी, गर्दन के पीछे विशुद्धि चक्र एवं आज्ञा चक्र के बीच में क्षण भर के लिए ठहरी,

फिर एक झटके के साथ दोनों आँखों के बीच वाले नासिका मूल के स्थान पर आकर ठहर गई। इसके बाद मेरा ध्यान चढ़ गया। वहाँ कब फाता लगा, मझे नहीं पता। दो घण्टे तक मैं आत्मलीन अवस्था में रहा। तत्पश्चात जब सुध-बुध आई तो मैं अनिर्वचनीय मस्ती से भरा हुआ था। मैं अपने पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर समझ गया कि यह शक्तिपात था। उस दिन मैने जाना कि कुण्डलिनी शक्ति कैसे जागती है? उस क्षण क्या होता है और साधक किस तरह दीन-दुनिया से बेखबर होकर ऊपर किसी रूहानी लोक में पहुँच जाता है जहाँ आनन्द ही आनन्द है। कामिल फकीर तो हर पल इसी मस्ती में रहता है, उसके व्यक्तित्व का हम क्या अध्ययन करेंगे!

इसके बाद ध्यान सुमिरन की मदहोशी बढ़ती गई। बैठने का चस्का चौबीसों घण्टे लगा रहता। रात का इंतज़ार करता कि शाम ढले और साधना में बैठूँ। गुरू कृपा ऐसी कि नींद आ जाती तो वे थपकी देकर उठा देते। शुरू में तो डर लगा कि बन्द कमरे में इस तरह थपकी कौन दे रहा है? फिर समझ में आ गया। आज्ञा चक्र से तेज प्रकाश की धारा निकलती और सिमटती। कानों में हर पल सांय-सांय, झींगुर की आवाज, चिड़िया की चहचहाअट, सीटी, घण्टे की ध्वनि, कीर्तन व कव्वालियों की धुनें सुनाई देती रहती। फिर एक बार पंक्तिबद्ध क्रम में देवी-देवताओं, साधु महात्माओं के, फकीरों, अवतार पुरूषों, ब्रह्मा-विष्णु-महेश के दिव्य दर्शन हुए। उनके ऊपर गुरूदेव और सबसे ऊपर श्वेत प्रकाश वाले गोले का नयनाभिराम नज़ारा दिखा। दूसरे दिन गुरूदेव ने समझाया कि यही अंतिम सत्य है यानी श्वेत प्रकाश। यह भीतर तुम्हारे सिर में भरना चाहिए।

कई बार ध्यानावस्था में आज्ञा चक्र, हृदय, दाहिना नफ्स, नाभी व मूलाधार चक्र एक साथ धड़कते हुए महसूस होते। बाबा साहब व गरूदेव की छवि आज्ञा चक्र

से उतर कर अन्तःकरण में स्थिर हो जाती। रात में ये दोनों संत घर में घूमते हुए और पलंग पर बैठते हुए नज़र आने लगे। पीछे मूलधार चक्र से कुण्डली उठकर मणिपूर चक्र तक आ जाती एवं ऊपर उठने के लिए झटके मारती। ध्यान में शरीर निश्चल हो जाता, कभी मैं शून्य में डूब जाता और डर लगता कि वापस नहीं लौट पाया तो मर जाऊँगा। यह बात सुन कर गुरूदेव हँस देते थे। कभी शरीर लकड़ी की तरह अकड़ जाता और रूह के नीचे उतरते वक्त बहुत दर्द महसूस होता। घर की रसोई से आने वाली बर्तन की आवाज सिर में हथौड़े की तरह लगती। एक बार तो बाहर गली में उठी मोटर साईकिल की आवाज़ ने ध्यानावस्था में सिर पर ऐसा असर किया कि मैं बीस मिनट तक गाफिल अवस्था में पड़ा रहा। उस दिन पता नहीं कैसे दिन में ग्यारह बजे ही ध्यान चढ़ गया था। शाम ढलते ही मेरी हालत ऐसी हो जाती कि घर के लोग बहत धीरे या इशारों में बात करते। ऐसा ही देवली वाले कमरे में भी होता। धीरे-धीरे गुरूदेव ने मुझे शोर-शराबे का अभ्यस्त कर दिया।

थोड़े समय बाद एक और नया अनुभव होने लगा-अनजानी आत्माओं की चीखें सुनाई देने लगीं। गुरूदेव ने एक बार सत्संग के दौरान खुलासा किया था कि हमारे चारों तरफ की हवा में अदृश्य आत्माएँ प्रतिपल मण्डराती रहती हैं। ये स्वयं के अनुकूल गर्भ की तलाश में भटकती रहती हैं। दुष्ट आत्माएँ चीखती-चिल्लाती हैं और राह चलते मनुष्य के टल्ला भी मार देती हैं। मैं इन आत्माओं का अहसास करना चाहता था। आपने मेरी जिज्ञासा को पकड़ लिया। फिर दसों बार ऐसे दृष्टांत मुझ पर घटित हुए। मझे याद नहीं कि यह कौन से शनिवार की बात है-मैं सोमलपुर स्थित हुज़ूर की दरगाह में था। रात के लगभग एक बजे होंगे। रज्जो चाचा वाले कमरे में मैं ध्यानस्थ बैठा था। तभी मुझे बाहर कुछ स्त्रियों की चीख-पुकार सुनाई दी और कोई औरत बोल रही थी-अरे, बो (वह) माइनै बैठ्यो

है (भीतर बैठा हुआ है)। मेरा ध्यान टूट गया। एक मिनट तक तो मैं समझ ही नहीं पाया कि मैं हूँ कहाँ? फिर व्यवस्थित हुआ। बाद में गुरुदेव ने मुस्कराते हुए कहा था-ऐसे होता रहता है, डरने की बात नहीं है। कभी कोई ऐसी आत्मा तुमसे बात भी कर सकती है। होता यह था कि ध्यान उतरने के दौरान मेरी श्वाँस कानों में गूंजने लगती थी और फिर इन आत्माओं की चीख-पुकार श्रुतिगोचर होती थी। उन दिनों राम भैय्या अक्सर कहते थे कि आपको पिताजी बहुत फास्ट ले जा रहे हैं, आप चुप रहा करो। अब मैं रूहानियत और गुरु-कृपा को गहराई तक समझने लगा था। किन्तु यहाँ तक भी मैं अपने मुर्शिद को परमात्म चेतना का देहधारी रूप नहीं मान पा रहा था।

उन्हीं दिनों की बात है। मेरे साथ मेरी धर्मपत्नी भी थी। दोपहर बाद कोई चार बजे का समय था। सत्संग-कक्ष में और कई लोग भी विराजमान थे। मैं गुरूदेव के एकदम सामने बैठा था-गर्दन और पीठ थोड़ी झुकी हुई थी। अचानक ही जैसे किसी ने मुझे सीधे तान दिया। आँख खुली तो पाया कि गुरूदेव स्थिर नजर से मुझे देख रहे हैं। मेरे स्वभाव में अध्येता वाली फितरत तो थी ही। मैने जोर लगा कर अपनी मद्रा बदलनी चाही लेकिन विफल रहा। बाद में मेरी पत्नी ने बताया कि लगभग आधा घण्टे तक मैं स्थिर बैठा रहा और गुरूदेव लगातार मुझ पर नजर टिकाए रहे। फकीर की नजर में ऐसी भी ताकत होती है, मैने पहली बार प्रत्यक्षतः जाना। इसमें छिपी हुई आपकी मेहरबानी थोड़े दिन बाद सामने आई। मैं देवली था। रात में जमकर साधना का दौर चल रहा था। पहली बार मैंने स्वयं के भीतर विस्फोट के साथ चकिया आँवला जितने बड़े लाल चक्र को घूमते हुए देखा। एक ही सप्ताह में ऐसा तीन बार हुआ। न चाहते हुए भी गुरुदेव के सामने यह बात मैंने कह दी। अब गुरू की फितरत देखिये-वे आश्चर्य के साथ बोले कि

अच्छा! ऐसा हुआ क्या? चलो, तुम्हारे पिछले जन्मों के पाप कट रहे हैं। तब मैं बहुत ही विनम्रता पूर्वक बोला गुरूदेव! यह कृपा आप ही कर रहे हैं अतः आपके समक्ष इसका उल्लेख करने की जरूरत नहीं थी किन्तु न जाने कैसे मेरे मुँह से यह बात निकल गई। आपने तत्काल फरमाया-'शिवजी! मैं आज तुमसे बहुत खुश हूँ।' आपका उक्त कथन मेरे अन्त:करण में उतर गया. मैं तो खुशी से बावला हो गया, धन्यभाग हो गया, भीतर से मालामाल हो गया, अन्दर जैसे खुशी के हजारों दीप जल उठे। मैं तत्काल आपके चरणों में गिर पड़ा। उन क्षणों की आंतरिक अनुभूति भी अनिर्वचनीय है। मुझे गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित विनय पत्रिका का एक पद याद आ रहा है-

ऐसो को उदार जग माहिं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर
राम सरिस कोऊ नाहिं॥

मैं इसे यों कहना चाहता हूँ कि **बिनु सेवा जो द्रवै शिष्य पर गुरू सरिस कोऊ नाहिं॥**
निश्चय ही मैं आपकी ऐसी कृपा क योग्य नहीं था। यह तो आपकी फकीरी उदारता थी जिसने मुझे अमृत चखा दिया। यहीं मैं रोता हूँ कि

गुरू नाम के पटतरै, देवे को कछु नाहिं।
का लै गुरू संतोखिए, हौंस रही मन माही॥

और तड़प कर मैं भक्त शिरोमणि मीरा के सुर में सुर मिला कर कीर्तन करने लगता हूँ कि

मेरे तो गुरू दयाल, दूसरो न कोई।
जाके हिरदै अमृत भरयो, मेरे मालिक सोई॥

आंतरिक चक्र खुलने का सिलसिला आगे भी जारी रहा-कभी तीन, कभी दो, कभी एक। रंग अलग-अलग लेकिन विस्फोट एक जैसा।

इसके बाद शेर दिखने लगा, शेर की गुर्राहट सुनाई देने लगी व कोई एक आँख बराबर दिखती रहती थी। फिर दो आँखें सामने आती। अन्ततः आज्ञाचक्र वाले स्थान पर एक बड़ी आँख स्थिर हो गई।..... ध्यान से उठने के बाद मेरी दशा नशे में चूर शराबी जैसी रहती थी न आँखें खुलती न मुँह से बोला जाता था।

इस तरह कुण्डली के जागरण और उठान का गुरू की रहमत से मैंने अनुभव किया।

4. यह भी कैसे भूलूँ

शक्तिपात के बाद रूहानियत का एक विलक्षण दौर घर पर भी शुरु हुआ। गर्मी की छुट्टियाँ चल रही थी। मस्ती तो दिन भर छाई रहती थी। सायंकाल ठीक चार बजे खुमारी चढ़ती और मैं अपनी पत्नी के साथ सत्संग शुरू करता। मुझे स्पष्ट महसूस होता था कि गुरूदेव मेरे अंत:करण में उतर कर धार्मिक चर्चा करा रहे हैं। अध्यात्म के विविध पक्षों का विश्लेषण होता, संत-महात्माओं की कहानियाँ चलती, गुरूदेव से सुने हुए प्रसंग दोहराये जाते, बाबा साहब के कृपा-प्रसंगों का सुधामय प्रवाह हमें गद्‌गद्‌ करता। लगभग एक घण्टे यह क्रम चलता था।

फिर संध्या समय दीया बत्ती के बाद हम ध्यान में बैठ जाते। पता नहीं कब और कैसे मेरे भीतर नित नए भजन की रचना हो जाती और मैं हाथों-हाथ भजन गाने लगता। श्रीमती जी बाद में बताती थी कि गायिकी का आरोह-अवरोह, धुन, लय आदि इतनी विलक्षण होती थी कि उन्हें गुरूदेव की साक्षात्‌ उपस्थिति का एहसास होने लगता। वे भजन को लिख भी लेती थी। ऐसे आठ भजन गुरुदेव की सहमति से उनकी पुस्तक 'तस्मै श्री गुरवे नमः' में प्रकाशित भी हो चुके हैं। उन भजनों के साथ बाकी बचे रह गए भजनों को इसी अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। यह गुरू कृपा का कैसा रूप था मैं नही जानता। कई बार मैं भजन गाते-गाते भाव-विभोर होकर नाचने लगता। ध्यान उतर जाने के बाद मुझे कुछ भी याद नहीं रहता था, बस एक अजीब सी मस्ती छाई रहती थी।

कभी-कभी हम भजन की सी.डी. चला देते थे। तब भजन सुनते-सुनते ही ध्यान चढ़ जाता और मैं मीरा, सूर, कबीर आदि के भजन एक दम नई धुन में गाने

लगता था। एक बार का प्रसंग है कि मैं सोफ़े पर अलग ही अन्दाज में बैठ गया। ध्यानस्थ तो था ही, फिर बोला-बहू! हम न तो गाते हैं, न ही नाचते हैं, हम केवल सुनते हैं। यह बात बोलने वाला कौन था, पता नहीं। इस दौर ने हमारे घर को स्वर्ग बना दिया था। एक बार श्रीमती जी गाऊन पहिने हुए नंगे सिर ही बैठ गई थी, तभी मालिक ने टोका-बहू! हमे बेअदबी पसन्द नहीं है।

ऐसा भी होता था कि कभी मैं ध्यानस्थ अवस्था में रूहानियत की सारगर्भित बातें बोलने लगता था। टी.वी. देखते-देखते, पर्दे पर गुरूदेव की मूरत आ जाती और मैं विस्मय विमूढ रह जाता। भोजन का भोग लगाते वक्त अनेकों बार हाथ में थाली घूमने लग जाती व शरीर रोमांचित हो जाता था। उस दिन भोजन अमृतमय लगता था। कभी-कभी इबादत के दौरान ही मेरे भीतर उड़द की दाल-रोटी, गट्टे की सब्जी-रोटी, आलू के कोफ्ते, सूजी का हलवा आदि खाने का विचार आता। साधना से उठने के बाद मैं देखता कि रसोई में वही भोजन बना है। गुरू कृपा की यह कैसी महिमा है! हर पल नजर, हर क्षण का साथ।

हम घर पर जो बातें करते थे, आप ध्यान कक्ष में किसी और के बहाने उन्हें दोहराते थे। हमारा तो घर ही जैसे मंदिर हो गया था। कई बार आप इस गुलाम में आवेशित होकर श्रीमती जी को स्त्री धर्म, सुहागन के दायित्व, साधिका के कर्त्तव्य आदि समझाने लगते थे। मतलब यह कि गुरु की चाहत असीम होती है। जिस मुरीद पर उनका दिल आ गया, उसके साथ वह कोई पर्दा नहीं रखता। मुरीद में स्वयं उतर कर बोलने लगता है, उसकी सोच, मुरीद की सोच बन जाती है। मुरीद के मुँह से वह स्वयं खाने लगता है। कई बार ऐसा हुआ कि भोजन का भोग लग गया और मैं केवल एक कौर खाकर चुपचाप उठ गया। दो चार बार ऐसा ही हुआ कि भोग लगाते-लगाते मेरी भूख शांत हो गई, फिर मैने भोजन

नहीं किया। सच कहता हूँ कि मैं बिल्कुल भी इस लायक नहीं था कि मालिक की मुझ पर इतनी दया बरसे। इतना सब कुछ करके भी वे अनजान बने रहते थे। सब कुछ करके भी आप कुछ नहीं जताते थे। बस एक बार हँसते हुए यह कहा था 'शिवजी! गर्मी की छुट्टियाँ एन्जॉय कर रहे हो।'

घर पर ध्यानावस्था में रचित भजन

(अन्तर्मन में गुरु के 'आवेश' से भावविभोर हो कर साधक कुछ इस तरह पुकारता है.....)

(1)

मैं तेरी याद में रो दूँ।
मैं खुद को तुझमें खो दूँ॥
इस जग के ज़र्रे-ज़र्रे में तुझको ही खोजूँ।
अपने अन्तर्मन में रे बाबा तुझको ही सोधूँ॥
मैं तेरी याद में रो दूँ.....

बाहर तुझको खोजूं रे बाबा भीतर तुझको सोधूँ।
तूँ ऐसे प्रबोध रे मुझको मैं खुद को ही बोधूँ॥
मैं तेरी याद में रो दूँ.....

मैं तुझमें मिल जाऊँ रे बाबा
फिर खुद ही खुद को सम्बोधूँ!
खुद को खोजूँ, खुद को बोधूँ!
और खुद को सम्बोधूँ!
मैं तेरी याद में रो दूँ, मैं खुद को तुझ में खोजूँ।

(2)

सद्गुरु ऐसे बोले रे
मेरे मन में अमृत घोले रे।
मन की गागर खाली करके
उसमें अमृत घोले रे।
मेरे सद्गुरु ऐसे बोले रे॥
इस अमृत से पगले प्राणी!
अन्तर्मन को धो ले रे।

सद्गुरु ऐसे बोले रे....

जब सद्गुरु भीतर बोले
तो फिर मन कैसे डोले रे।
जब गुरु नाम गूंजे मन में
पाप की नगर डोले रे।
जैसे भूकम्प आये धरा पर
धरती डगमग डोले रे।
सद्गुरु ऐसे बोले रे....

गुरु तो भीतर भरे उजाला,
तू उसमें मन को धोले रे!
तू अरदास करे जब-जब
भीतर की गाँठे खोले रे।
सद्गुरु ऐसे बोले रे..

ऐसी कृपा करे बाबा
सब कपट-कपाट खोले रे।
अब मन नाहीं डोले मेरा
सोऽहम सोऽहम बोले रे॥
सद्गुरु ऐसे बोले रे...
मेर मन में अमृत घोले रे॥

(3)

मैंने ओढ़ी बाबा की चदरिया।
मैं तो जाऊँ बाबा की नगरिया।
मोहे लागी बाबा की नजरिया।
मैं तो जाऊँ रे उसकी नगरिया।

मैं तो सोऊँ बाबा की बजरिया;
मैंने ओढ़ी बाबा की चदरिया।
मैं तो छोडूं रे जग के नाते;
मेरे सिर पे बाबा की गगरिया।

ऐसे लागी रे मुझको नजरिया;
मैं तो ढोऊँ बाबा की गठरिया।
तेरी उजली-उजली चदरिया;
अमृत से सनी रे बजरिया।

मैं तो जाऊँ बाबा की नगरिया;
मैं तो सोऊँ बाबा की सजरिया।
ऐसी लागी रे मोहे नजरिया;
ओढ़ी-झीनी रे झीनी चदरिया।

यहीं है स्वर्ग, वैकुण्ठ यहीं पर;
सब कुछ इसी नगरिया।
मैं तो जाऊँ बाबा की नगरिया।

(4)

मैंने ओढी कामरिया श्याम की।
बंसी बाजे रे बाबा तेरे नाम की।
जगती के रस भोग लिये सब।
अब ओढी दुपटिया राम की;

बंसी बाजे रे बाबा तेरे नाम की!
भव से पार करेंगे बाबा;
ऐसी महिमा बाबा के नाम की।
तू समझ कथा गुरु नाम की।
तू जोड़ रे खुद को हुजूर से।
मन को भर ले उस नूर से।
यह बात बहुत है काम की।
बंसी बाजे रे बाबा के नाम की!
अपने भीतर जोत जगा ले।
घर बैठे ही सब कुछ पा ले।
तू देख झलक सत्नाम की!
बंसी बाजे बाबा के नाम की!
मैंने सुधा पी बाबा के नाम की!
तब जानी बात एक काम की;
यह दुनिया नहीं किसी काम की।
ऐसी महिमा बाबा के नाम की॥

(5)

इसे अपनी गोद में बिठा ले
रे बाबा सोमलपुर वाले!
मेरे प्यारे के दिल में पड़ गये छाले;
इसे तुम बिन कौन सम्हाले!
तू ही मक्का, तू ही काबा
तू ही शक्ति भोले बाबा
पिला अपनी कृपा के प्याले!
रे ओ सोमलपुर वाले

मेरा प्यारा तेरे हवाले
ओ सोमलपुर वाले
तुझ बिन इसका
कौन रे बाबा!

विनती सुन तू
मौन रे बाबा!
इसे किया रे तेरे हवाले;
ओ सोमलपुर वाले।

ऐसा हुआ क्या रे कसूर?
बोलो रे मेरे हुजूर!
तुम तो सबके रखवाले।
मिटा दो इसके दिल के छाले!
रे बाबा सोमलपुर वाले.....!

और कहाँ बोलो हम जाएँ?
किसको अपनी व्यथा सुनाएँ।
हम सबको गले लगा ले
ओ बाबा सोमलपुर वाले!

(6)

मझे अपना यार बना ले रे, ओ सोमलपुर वाले।
मझे अपनी शमाँ बनाले, रे बाबा सोमलपुर वाले॥
तेरा रुप मुझे दिखा दे, तेरी प्रीत की रीत सिखा दे।
मुझे अब अपने में मिला ले, रे सोमलपुर वाले।
तेरे नेह का मेह बरसे, झमाझम नेह का मेह बरसे।
मेरा कण-कण खुशी से हरसे रे, कण-कण मेरा हरसे रे॥
मुझे तू बेमोल बिकाले,

रे बाबा सोमलपुर वाले॥
मझे अपना यार बना ले।
मुझे अपनी शमाँ बना ले।
सुन ओ सोमलपुर वाले॥

(7)

तेरी रहमत का पानी बरसे!
मैं जाऊँ कहाँ रे तेरे दर से!
दूर मत करियो अपनी नजर से!
'मैं जाऊँ कहाँ रे तेरे घर से॥

रंग दे चुनरिया, रंग दे चुनरियाः
तू अपने ही कर से
जाऊँ कहाँ मैं तेरे दर से।
ये नयना, दो नयना मेरे

तेरे दरस को तरसे;
'जाऊँ कहाँ मैं तेरे दर से।
जब ज्ञान की आँधी आये
रहमत का पानी बरसे;

मैं जाऊँ कहाँ रे तेरे दर से।
देख ली मैंने जग की बातें
अब जाऊँ नहीं तेरे घर से
दूर मत करियो अपनी नजर से।

लागी लगन मोहे तेरे घर से
छूटे नहीं रे लगन तेरे दर से
ये नयना तो बस तेरे रूप को तरसे
तेरी रहमत का पानी बरसे
जाऊँ कहाँ तेरे दर से।

(8)

मैं तो बन गया तेरा यार
तूने ऐसा किया रे प्यार।
जो कुछ बोले रे मेरे भीतर बोल
अरे बाबा मेरे भीतर बोल
तेरे बन्द दरवाजे अब तो खोल।
अब तो बहा दे रस की धार;
मैं तो बन गया तेरा यार।
बहा दे मीठे रस की धार
मैं तो बन गया तेरा यार।
माटी कैसे कहे रे, मेरा भी कोई मोल
मेरा तो कोई मोल नहीं।
तेरे मन में क्या है, तू बोल सही।
मैं तो मिटूँ रे सौ-सौ बार;
मैं तो बन गया रे तेरा यार।
तू तो बहा दे सोऽहम धार;
तड़पे रे तेरा यार।
तुझे पुकारूं मैं बार-बार।
सुनले अब तो मेरे यार।
तरसा मत बनकर मेरा यार।
मैं तो पीऊँ रे रस की धार।
जाने कितने जनम रे बीते।
खाली-खाली, रीते-रीते।
अब जाकर मिला रे मेरा यार
बाबा तूने किया रे मुझको प्यार
मैं तो बन गया तेरा यार।

(9)

मेरे बाबा इतना वर दो
इस मन में सुधा रस भर दो
मेरे सिर पर हाथ धर दो,
मेरे घर को तीरथ कर दो।

अब कुछ भी चाह नहीं है,
बस तेरी राह सही है।
दिल की अरदास यही है
मेरे भीतर भक्ति भर दो।
इस मन में सुधा रस भर दो॥

हैं हम तो तेरे ही दास,
रख लो हमें अपने पास।
ऐसी नजर अब कर दो,
बस इतना सा वर दो।
मेरे मन में सुधा रस भर दो॥

इतनी दया अब कर दो,
नव जोत से रौशन कर दो।
अपनी चौखट पे दर दो,
रे सब को धुन से भर दो॥

(10)

मेरे मन में उठी है रे हूक,
बाबा मैं तेरा यार हो गया।
तेरे दर पे मची है रे लूट
सभी का बेड़ा परा हो गया।

तेरी रहमत का नहीं कोई पार
जैसे लहराये पारावार।

उठी नाम की मन में कूक
मैं तो रसधार हो गया।
सभी का बेड़ा पार हो गया॥

ए रे जगत के नाथ
तूने धरा जो सिर पर हाथ।
तेरी कृपा है बड़ी अचूक
कि तेरा दीदार हो गया।
सभी का बेड़ा पार हो गया॥

तुझे छोड़, कहाँ अब जाऊँ?
तेरे दर की ख़ाक हो जाऊँ।
तेरे दर पे मची ऐसी लूट
तुझसे इकरार हो गया।
सभी का बेड़ा पार हो गया॥

(11)

मैने तो लगा दी अरजी
तू तारे, तो तेरी मरजी।
तू ही दाता, तू ही विधाता।
तू ही सब कष्टों का त्राता।
मैं तो हूँ बस, एक गरजी।

तू तारे तो तेरी मरजी।
सोमलपुर वाले बाबा
क्या है तेरी मरजी
मैने तो लगा दी अरजी
अब तारे तो तेरी मरजी॥

अब क्यों इतना तरसाये?
घर क्यों नहीं मुझे दिखाए।
क्यों टीस दरस की भर दी।
अब तारे तो तेरी मरजी।
तेरे दर पे पड़ा है एक गरजी
लगा कर अपनी अरजी।
अरे पढ़ तो ले मेरी अरजी
चाहे असली है या फरजी
तू बता, तेरी क्या मरजी।
कब पढ़ेगा दिल की अरजी
बाबा रे, बस तू ही जाने।
तेरे मन की मरजी।
अब तारे तो तेरी मरजी॥

वस्तुतः यह भावदेह खेल है। गुरूकृपा के परिणाम स्वरूप कई बार साधक की यह देह सक्रिय हो जाती है। तब सामान्यत: तो यही दिखता है कि उसकी भौतिक देह क्रिया-कलाप कर रही है। लेकिन उस अवस्था की गतिविधियाँ भावदेह की होती हैं-पूर्वाभास, भविष्य-कथन, काव्य रचना, संकट से बचने के दिशा-निर्देश आदि अनेक ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं जिन पर सांसारिक लोगों को विश्वास नहीं होता है। इस भावदेह का प्रवाह शान्त हो जाने पर प्रायः साधक को कुछ भी याद नहीं रहता है; या बहुत कुछ विस्मृत हो जाता है। इससे आगे मनस देह, सूक्ष्म देह, आत्म देह, ब्रह्म देह व निर्वाण देह के स्तर होते हैं।

5. नाम को परिपक्व किया

फकीर की अद्भुत फितरत यह है कि वही नाम देता है, वही इबादत में बिठाता है, वही सुमिरन कराता है और फिर वही शाबासी देता है। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। मालिक के फैज़ से सुमिरन की भी धुन लग गई। मैं देवली आते जाते वक्त बस में साढे तीन घण्टे, सुमिरन में डूबा रहता। वेकेण्ट पीरियड में भी नाम जपता रहता। प्रतिदिन संध्या के बाद गुरूमंत्र का जाप करने बैठ जाता। रात ग्यारह बजे लेटता और तीन बजे वापस उठ जाता। आगे चल कर तो पूरी रात में मात्र दो घण्टे सोता तथा दिन में तीन बजे कॉलेज से घर लौटते ही बैठ जाता। मालिक का करम यह कि थकान बिलकुल नहीं होती थी। जब कभी किसी के सामने मुँह से यह बात निकल जाती हो सारा क्रम बिगड़ जाता और दो घण्टे की बैठक भी मुश्किल हो जाती। फिर गुरूदेव से माफी माँगता, बार-बार गिड़गिड़ाता तब कहीं बात बनती थी। इससे सिद्ध होता कि साधक स्वयं कुछ नहीं कर सकता, उसके मुर्शिद की रहमत से ही उसकी साधना आगे बढ़ती है।

मैने पाइल्स का ऑपरेशन कराया था। डॉक्टर ने ज्यादा बैठने के लिये मना कर दिया और कहा कि यथा सम्भव रबर-ट्यूब पर ही बैठा करूँ। थोड़े दिनों बाद ही नवरात्रे आ गये। गुरूदेव ने सवा लाख जप करने का आदेश दिया। पाइल्स के ऑपरेशन के बाद मुझे यह असम्भव लग रहा था लेकिन तभी याद आया कि **'जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे, अंधे को सब कुछ दरसाई'**। इसी के साथ मैं निश्चिंत हो गया। एक समय भोजन, सवा लाख जाप, कॉलेज की नौकरी, पायल्स की जगह पर पोस्ट ऑपरेटिव दर्द-यह सब अनुष्ठान कैसे पूरा हआ. गुरूदेव ही जानें। अनुष्ठान के अंतिम चरण में भीतर कोई बोलने लगा-'अच्छा भाई, मान लिया।'

बाद में मालिक ने बताया कि वे बाबा हुजूर थे जो इस तरह साधकों का हौंसला बढ़ाते रहते थे। यहाँ मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ कि यदि साधक स्वयं को अपने गुरु के हवाले कर दे तो फिर साधना सरल हो जाती है।

रात में साधना के दौरान आप कई बार मझे गुम कर देते थे-तीन घण्टे, एक मिनट की तरह बीत जाते थे। सुध-बुध लौटने पर कुछ भी याद नहीं रहता था। केवल महाशांति महसूस होती थी। कई बार साफ-साफ महसूस होता कि मैं ध्यान की अनन्त गहराई में उतरता जा रहा हूँ। तब एक अनजाने भय से मैं आँखे खोल लेता। मौका मिलते ही गुरूदेव समझाते कि डरा मत करो, हम तुम्हारे साथ हैं ना!

अगले नवरात्रे में आपने पुनः सवा लाख जाप कराए। इस बार मेरा पसीना छूटता रहा, क्यों? पता नहीं और मालिक भी कुछ नहीं बोले। अनुष्ठान तो पूर्ण हुआ किन्तु बहुत मुश्किल से। यह भी गुरू की फितरत है-कभी फूलों के ढेर पर बैठा दे और कभी कंकरीट की ढेरी पर पटक दे।

यहाँ एक उल्लेखनीय बात स्पष्ट करता हूँ-मुझे किसी भी काम में दिखावा तथा अनावश्यक औपचारिकताएँ पसंद नहीं है। साधना के प्रसंग में भी मेरा यही नजरिया है। मैने बरसों तक कॉलेज में संत व सूफी साहित्य पढ़ाया है, इसका भी प्रभाव था कि मैंने फूल-माला, अगरबत्ती, आसन आदि को महत्व नहीं दिया। माला हाथ में नहीं ली। जब ली थी तो पहले दिन ही मात्र दस मिनट बाद छूट गई। तब गुरूदेव बोले थे-तुम्हें माला की जरूरत नहीं है। मैं जिस बिस्तर पर सोता था उसी पर बैठ कर ध्यान-साधना करता था। देवली में तो प्रायः धुली हुई चादर भी नहीं रहती थी। बैठे-बैठे थक जाता तो अधलेटी

अवस्था में नाम चालू रखता, कुर्सी पर बैठ जाता, दोनों पैर सीधे करके बैठ जाता; बस, जाप चालू रखता। इस तरह बिना किसी लाग-लपेट के की गई मेरी इबादत मालिक हर पल कबूल करते रहे।

इससे मैं तो यही समझा हूँ कि साधक किसी भी अवस्था साधना करें, वह स्वीकार होती है। गुरू इससे अधिक और क्या छूट देगा!

सुमिरन की इस राह पर आप अनेक अनुभूतियाँ भी कराते जा रहे थे। हुजूर के समाधि कक्ष में सिजदा करते हुए सैकड़ों जायरीन, कभी हमारे बुजुर्ग फकीरों की उपस्थिति, कभी अनजाने मंत्रों की धुनें गूँजती, कभी नूरानी रोशनियों का जलजला दृष्टिगोचर होता। एक बार वहीं इबादत के दौरान बेंत के सहारे चलते हुए हज़रत निजामुल हक कलंदर र.अ. साहब के दीदार का सौभाग्य मिला जिसकी आगे भी पुनरावृत्ति होती रही। लाल वस्त्र धारी देवी के दर्शन घर पर होते थे। इसी आस्ताने में एक दिन अनजानी दरगाह के दर्शन हुए और सुनाई दिया-मोहम्मद गुल खाँ साहब । बीसों बार तीर्थों के दर्शन हुए। नदी किनारे आश्रम, चांदनी रात, दिव्य श्वेत शिवालय, विशाल दिव्य दरगाह, अनजाने फकीरों के साथ गुरूदेव आदि गुजरान तो होते ही रहते थे। इन्हें बार-बार देखने की चाहत, लम्बी बैठक के लिए प्रेरित करती रहती थी। इस दौरान जब-जब आश्रम जाता गुरूदेव मेरी पाठ इस तरह थपथपाते थे कि मैं निहाल हो जाता।

बीच में ऐसा दौर भी आया कि जागते हुए भी गफलत रहने लगी-गर्म तवे को बिना कपड़े के पकड़ लेता, चाय में नमक डाल देता, सौदा खरीद कर पैसे वापस लेना भूल जाता, अपने घर की गली का रास्ता याद नहीं रहता था। एक बार तो बयासी रुपये की दवाएँ खरीदी, दुकानदार को पाँच सौ रुपये का नोट दिया और

पैसे वापस लिए बिना ही चला गया। कुछ भी याद नहीं रहा। जब दूध खरीदने के लिए जेब टटोली तो हक्का-बक्का रह गया-पैसे कहां गए? सोचा कहीं गिर गए होंगे। तब गुरूदेव मेरे भीतर बोले-उस दुकान पर जाओ, तुम्हारे पैसे सुरक्षित पड़े हैं। मैं उस मेडिकल शॉप पर गया। मुझे देखते ही वह बोला कि दो दिन पहले आप बचे हुए रुपये ले जाना भूल गए थे और उसने चार सौ अठारह रुपये लौटा दिए। कुछ दिन बाद अजमेर आने पर यह सब गुरूदेव को बताया। वे सदैव की तरह मुस्करा दिए और चुपचाप मेरी स्थिति में सुधार कर दिया।

गहरे सुमिरन से उठने के बाद मुझे कमरे का दरवाजा नहीं मिलता था, कई बार डर जाता था कि इतनी देर जाने कहाँ था एवं कहाँ से आया हूँ, कभी लगता था कि मर कर वापस जीवित हुआ हूँ। ऐसा भी महसूस होता कि मानो किसी दूसरे लोक में रह कर आया हूँ। यह सब ध्यान सुमिरन के दौरान घटित होता रहता था।

तत्पश्चात तीसरी बार स्वयं के स्तर पर सवा लाख जाप किये। चौथी बार गुरूमहाराज रामदत्त जी ने चालीस दिन का अनुष्ठान कराया-इसका विस्तृत विवरण आगे अन्य अध्याय में दिया गया है।

इस तरह मुझे गुरुदेव की तवज्जह मिलती रही, कृपा बरसती रही और मैं ध्यान सुमिरन की राह पर आगे बढ़ता रहा। मालिक ने अन्ततः मुझे शब्द धुन से जोड़ दिया-मैं धन्यभाग हुआ, बानसीब हुआ।

6. सूक्ष्म शरीर के दर्शन व रूहानी अनुभूतियाँ

यहाँ मैं सोचता हूँ कि मैने आखिर किया क्या? केवल गुरु मंत्र का जाप किया और कुछ नहीं। बदले में गुरूदेव ने मेरी झोली भर दी। सूक्ष्म शरीर एवं सूक्ष्म लोकों के दर्शन कराए और अनेक गुजरानों से मालामाल कर दिया।

एक बार मुझे ध्यान पर अंग्रेजी में बनी हुई आधे घण्टे की अवधि वाली एक सी.डी. उपलब्ध हुई। उसमें ध्यान की विधि और सूक्ष्म शरीर के विषय में वैज्ञानिक सच्चाई प्रस्तुत की गई थी। उसे देख कर मैने मन में ही गुरूदेव से निवेदन किया कि ये सारे दृश्य मैं स्वयं के भीतर देखना चाहता हूँ। मेरे मालिक इतने मेहरबान कि उन्होंने उसी दिन रात के समय साधना के दौरान मेरी इच्छा पूरी कर दी। मैने अपने सूक्ष्म शरीर को ठीक सामने चमकीले लाल वर्ण में ध्यानस्थ देखा। फिर उसकी अनेक मुद्राएँ बदलती रही। तत्पश्चात् लगभग एक फीट के आकार वाला मेरा सूक्ष्म शरीर मेरी देह से निकल कर तारों भरे नीले आकाश में ऊँचा उठने लगा। वह चाँदी की रस्सी (चेतन रज्जू) के जरिए मेरी देह से जुड़ा हुआ था। कई बार तो वह थोड़ी दूर जा कर वापस आता रहा। फिर ऊपर उठा। जाने कितना दूर गया। विलक्षण ज्योति पुंजों को पार किया; चारों तरफ सन्नाटा था। बीच-बीच में गुरूदेव कह रहे थे-अच्छी तरह देख लो, सूक्ष्म देह ऐसी ही होती है और जो ज्योति पुंज तुम्हें दिख रहे हैं वे सूक्ष्म लोक हैं। लगभग दस मिनिट तक ऐसा रूहानी प्रवाह चलता रहा। फिर टुकड़ों-टुकड़ों में आगे भी कई बार आप मुझे इसी तरह स्वयं का सूक्ष्म रूप दिखाते रहे। कभी छोटा, कभी बड़ा, कभी एक साथ अनेक सूक्ष्म आकार, कभी प्रकाश के गोलों में आता जाता हुआ और कभी नाभी से व कभी आज्ञाचक्र से निकलता हुआ। सद्गुरू की यह ऐसी कृपा है कि जिसके बदले प्राण भी न्योछावर करने पड़ें तो भी

कम है। इस खुशी में झूमता हुआ आश्रम पहुंचा तो आप एकदम शांत व अनजान से बैठे रहे। उस दिन कोई बात नहीं हुई। असंलग्न सी उदासीनता रही। गुरुदेव को मैने इतने बडे दाता के रूप में देखा है, मैं अवश्य ही बड़भागी हूँ। इस अनुभव का मैं पाँच प्रतिशत अंश भी नहीं लिख पाया हूँ। गुरूदेव सच कहते थे कि रूहानियत के जो दर्शन होते हैं, उसका यथावत् लेखन सम्भव नहीं है।

ऐसा ही गुजरान अप्रैल 2008 में घटित हुआ। दिन तो मुझे याद नहीं। कॉलेज में परीक्षाएँ चल रही थी। रोज की भाँति उस दिन भी मैं आधी रात गए ध्यानस्थ बैठा था। जाने कब मेरा सूक्ष्म शरीर देहाकार में मेरे सामने आ गया। मैं स्नानघर में गया, वहाँ भी सूक्ष्म देह उसी रूप में साथ थी। मैं स्नान करने लगा तो उसे वहीं देख कर डर गया। चीख कर भागा। उस दिन मुझसे बहुत बड़ी चूक हो गई। गुरू कृपा से मुझे भौतिक देह से अलग सूक्ष्म देह को क्रिया करते हुए देखने का सौभाग्य मिला था लेकिन मैं उस गुरू-महिमा को सम्हाल नहीं सका। मालिक बोले-अब पुनः अभ्यास करना पड़ेगा, चलो, जैसी हुजूर की मर्जी।

मुझे याद आता है कि गुरूदेव कहा करते थे-संत अपने कई सूक्ष्म रूप एक साथ प्रक्षिप्त कर सकता है। तब मैं समझ नहीं पाता था कि स्थूल देह से ही सूक्ष्म देह कैसे बाहर निकल सकती है और कैसे काम कर सकती है। मालिक ने यह साक्षात् दिखला दिया। यहाँ फिर से दोहराऊँ कि मैं अध्यात्म को स्वयं करके देखना चाहता था। गुरूदेव धीरे-धीरे वैसा ही कराते जा रहे थे। उस समय मैं समझ चुका था कि मेरी रूहानी स्थिति अभी इतनी परिपक्व नहीं थी कि मैं सूक्ष्म शरीर वाले स्तर का निर्वाह कर पाता। इसीलिये वह गुजरान वहीं ठहर गया।

एक बार ध्यानावस्था में मैं किसी ऐसी दरगाह में पहुँच गया जो चारों तरफ से बन्द थी। भीतर जाते ही मुख्य द्वार वाली जगह पर भी चूने-पत्थर की दीवार

खड़ी हो गई। धीरे-धीरे वहाँ पानी भरने लगा। पानी घुटनों से ऊपर पहुँच गया। मैंने चारों तरफ नज़र दौड़ाई। कहीं भी बाहर निकलने का रास्ता नहीं था। मैं डर गया कि यों तो मैं यहीं डूब जाऊँगा। डर के मारे मेरी चीख निकल गई और ध्यान टूट गया। बाद में गुरूदेव ने बताया कि यह बहुत अच्छी स्थिति थी तुम्हें डरना नहीं चाहिये था डूब जाते तो ज्यादा अच्छा रहता। वे इतना कहकर चुप हो गये लेकिन मैं उनकी बात का रहस्य नहीं समझ सका।

ऐसे ही एक बार मैं किसी विशाल दरगाह में गुरूदेव के पास बैठा था। जाने किस बात पर वे मुझसे खफा थे और कह रहे थे-तुम झूठ बोलते हो। तभी राम भैया ने मेरा हाथ पकड़कर कहा कि भाई साहब न तो झूठ बोलते हैं और न ही आपकी शान में ये कभी कोई गुस्ताखी करेंगे। मैं इनकी गारन्टी लेता हूँ। तब मालिक ने फरमाया कि चलो ठीक है, अब शिवजी को भोजन कराओ। मैंने यह दृष्टान्त राम भैया को बताया, सुनकर वे बोले कि भाईसाहब आप किस्मत वाले हो अन्यथा मैं किसी का हाथ नहीं पकड़ता हूँ और यदि पकड़ लिया तो फिर छोड़ता नहीं हूँ। आज राम भैया गुरू महाराज के पद पर प्रतिष्ठित हैं और मुझ पर वे जितनी कृपा कर रहे हैं उसे देखकर मुझे हर पल उनके द्वारा कहा हुआ यह कथन याद आता रहता है।

वह गुरू पूनम से पहले वाली रात थी। मालिक के साथ मैं भी बाबा हुजूर के आस्ताने पर था। मैंने आस्ताने में बैठकर इबादत की, फिर उठकर पीछे वाले दालान की ऊँची चबूतरी पर बैठ गया। आधी रात के बाद का समय था। मुझे थोड़ा डर लग रहा था। जाने कहाँ से आकर दो कुत्ते मेरे सामने बैठ गये। मैं ध्यानस्थ हो गया। लगभग तीन बजे ध्यान टूटा तो मैंने देखा कि वे दोनों कुत्ते वहीं बैठे हुए थे। ज्योंही मैं उठा त्योंही वे भी उठकर जाने कहाँ चले गये। मैने उन कुत्तों को सोमलपुर वाली दरगाह में कभी भी नहीं देखा था। सुबह जब

गुरूदेव को प्रणाम किया तो उन्होंने बहुत ही प्यार से पीठ थपथपाते हुये कहा- शाबाश। मैं इस दृष्टान्त का मतलब नहीं समझ सका लेकिन गुरूदेव से शाबासी पाकर मन ही मन मस्त हो गया।

एक दौर ऐसा भी आया कि रात को इबादत के बाद मैं चाहकर भी सो नहीं पाता था। आँखें बन्द करते ही पूरा कमरा दिखने लगता, बस्ती की गलियाँ दिखने लगती, शहर के बाजार दिखने लगते और भी पता नहीं क्या-क्या दिखने लगता। मैंने पता नहीं क्यों इसे अपनी परेशानी समझ कर पत्नी को बता दिया और थोड़े समय बाद ही यह सिलसिला समाप्त हो गया।

मैं जब कभी भी रात को आश्रम में ठहरता तो कोशिश यह करता कि इबादत में बैठा रहूँ। पिताजी वाले ध्यान कक्ष के सामने हॉल में बैठे हुए मैं गुरु नाम का सुमिरन करता रहता था। बीच-बीच में जब भी आँख खुलती तो मैं देखता कि सफेद पोशाक पहने अनेक बुजुर्ग आ रहे हैं। बाद में राम भैया ने समझाया कि रात के वक्त कई रूहें पिताजी के पास आती-जाती रहती हैं।

शक्तिपात के बाद वाले आरम्भिक दौर में मुझे बर्फ की पहाड़ियों पर महादेव शिव के दर्शन होते रहते थे। फिर कभी उनका स्वर्णिम त्रिशूल दिखता तो कभी तांबे का विशाल त्रिशूल नजर आता। दो-चार बार प्रजापति ब्रह्मा जी के भी दर्शन हुये। पिताजी ने समझाया कि इस तरह फकीर अपने मुरीद के आन्तरिक स्तर को ऊँचा करता रहता है जिससे कि वह आगे आने वाली रूहानियत की चढ़ाई चढ़ सके।

ऐसा भी कई बार होता था कि मैं स्वयं को और अपने घर को भूल जाता था। बीच-बीच में ध्यान उतरता-चढ़ता रहता था तब मैं थोड़ा सा भय महसूस करता था कि पता नहीं कहाँ बैठा हूँ, कहाँ से आया हूँ और कहाँ जाऊँगा। मुझे लगता था कि मैं शिव शर्मा नही कोई और हूँ, कौन हूँ, पता नहीं। ऐसी अनुभूति से मैं

डरकर उठ जाया करता था। फिर जब कभी पिताजी मौज में होते थे तो पुनः इशारा करते थे कि इतना डरते क्यों हो? तुम्हारा गुरू तुम्हारे साथ है।
गुरूदेव के चरणों में बैठकर मैंने कुछ पुस्तकें लिखीं। लेखन के दौरान उनकी रूहानी कृपा का हर पल एहसास रहता था। देवली के कस्बाई कॉलेज की छोटी सी लाइब्रेरी में मुझे पुष्कर और दशानन रावण से सम्बन्धित अद्भुत पुस्तकें मिली। इसका जिक्र मैं पहले कर चुका हूँ। दशानन रावण पर शोध-कार्य मैंने गुरूदेव की प्रेरणा से ही शुरू किया था और अक्सर कहता रहता था कि मुझसे यह काम शायद ही होगा, आप अपनी दिव्य दृष्टि से मुझे आँखों देखा सच बता दीजिए। वे हँसकर चुप रह जाते थे। बीस-बीस दिन तक मैं एक भी लाइन नहीं लिख पाता था, केवल आपको याद करता रहता था। फिर किसी दिन अचानक ही पुस्तक लेखन शुरू होता और मुझे स्पष्टतः महसूस होता था कि भीतर आप बोलते जा रहे हैं, मैं कागज पर लिखता जा रहा हूँ। उन दिनों मैंने महसूस किया कि गुरु अपने मुरीद के भीतर उतरकर कैसे बोलता है। दशानन चरित पूरे तौर पर गुरुदेव द्वारा लिखाया गया शोध प्रबन्ध है। फिर गुरूदेव की पुस्तक 'देह से अदेह' के सम्पादन का काम शुरू किया। एक दिन ध्यान कक्ष में ही आप बोले-शिवजी! सारे अधिकार आपको दिये, चाहे जितना मैटर काटो और चाहे जितना मैटर नया जोड़ो। मेरे जैसे मामूली साधक के लिये यह बहुत बड़ा सौभाग्य था कि मुझे गुरूदेव की ऐसी कालजयी कृति के सम्पादन का दायित्व मिला। उन दिनों इस कार्य का मुझ पर जुनून चढ़ गया जिसे कॉलेज के साथी प्रवक्ता भी देखते थे। यह कार्य करने के दौरान मुझे प्रतिक्षण मालिक की उपस्थिति का अहसास होता रहता था। मैं प्रत्यक्षतः महसूस करता था कि सम्पादन का कार्य वे स्वयं कर रहे हैं। मेरे हाथ में तो केवल पैन था। श्री आर.सी.शर्मा की पुस्तक का काम कराते समय भी मुझे अनेक बार ऐसा लगा कि वे मेरे भीतर उतरे हुये हैं और मैं लगातार बोलता जा रहा हूँ। मेरे मालिक की मुझ पर ऐसी-ऐसी रूहानी कृपाएँ रही हैं कि मैं उन्हें कहाँ तक लिखूँ। मैं तो बस यही निवेदन करना चाहता हूँ कि

उन्होंने मेरे साथ जो अलौकिक गुजरान किये हैं वैसे सबके साथ करें। मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि आप केवल स्वयं को गुरू तत्व की धारा में पटक दें, फिर रूहानियत का आनन्द उठायें। आपकी दोनों जहान की चिन्ताएँ छूट जायेंगी और आप मस्ती में झूमा करेंगे।

7. परदा फरमाने के बाद

गुरूदेव ने बाइस नवम्बर दो हजार आठ (22-11-2008) के दिन परदा लिया था। उसके बाद तो आप सावन की दूधिया घटाओं की तरह झमाझम बरसने लगे। आश्रम में अनेक साथियों को भी आप अपनी कृपा से तर-ब-तर करने लगे! ऐसा मैंने सुना है। मैं छब्बीस नवम्बर को आपके समाधि कक्ष में बैठा हुआ था। ध्यान चढ़ गया और मैंने देखा कि समाधि से एक लाल कमल ऊपर उठ रहा है और आपकी आवाज आ रही है कि देखो, यह ब्रह्म कमल है। मैं अक्सर आपको कहा करता था कि नाभि कमल क्या होता है।

संत-महात्मा अपनी नाभि से ऐसा कमल कैसे निकाल लेते हैं? यह दृष्टान्त मेरे उस सवाल का जवाब था। उस दिव्य कमल की नूरानी चमक को लिखना असम्भव है। बहुत देर तक यह अलौकिक चमक वाला दृश्य कायम रहा। इसके बाद समाधि से एक हल्का गुलाबी बादल उठा और पूरे कक्ष में छा गया। साथ ही आपने समझाया कि यह आत्मा है जो देह त्यागने के बाद सर्वव्यापी हो जाती है, अब हमारा यही रूप है। उस रूहानी बादल के बीच-बीच में स्वर्णिम स्फुलिंग चमक रहे थे। तत्पश्चात् समाधि से चमकदार श्वेत ज्योति निकली जिसके ऊपर ऊठते ही उसमें लाल, पीले और नीले प्रकाश के बादल मिल गए। पूरा समाधि कक्ष इस नूरानी रोशनी में डूबा हुआ था। मैंने आँखें खोल कर देखा तो भी ऐसा ही अद्भुत एहसास हो रहा था। कुल मिलाकर डेढ़ घंटे तक ऐसी ही अलौकिक अनुभूति होती रही। मैं केवल दृष्टा था और कुछ नहीं। वह अद्भुत मंजर मेरे साधना पथ का सर्वश्रेष्ठ दृष्टान्त था जो मेरे साथ गुजरा। आप फरमा रहे थे कि मैं कहीं नहीं गया हूँ, यहीं हूँ। चारों तरफ देखो मैं तुम्हें नज़र आऊँगा।' मैं अब प्रकाश हूँ, सुगन्ध हूँ, स्पर्श हूँ और शब्द भी हूँ। मैं मद मस्त झूमता हुआ समाधि

कक्ष से बाहर निकला। रामजी महाराज ने मुझे तीये का प्रसाद दिया तो मैं हक्का-बक्का रह गया। अभी अभी तो मैं मालिक से बात करके निकला था। मैं अर्द्ध बेहोशी जैसी हालत में बाहर निकल कर कुर्सी पर बैठ गया। वहाँ पुनः मेरे मालिक फरमाने लगे-शिवजी! ये तो यों ही बोल रहे हैं, मेरा कोई तीया नहीं हुआ है। यह तो प्रसाद है खा लो। अब देखो मैं सब तरफ खड़ा हूँ। फिर मैंने चारों तरफ आपकी नूरानी छवि देखी और अनूठी खुमारी में डूब गया। मैं उस समय बेखुदी में था मुझे नहीं पता कि मैंने रामजी महाराज और वहाँ उपस्थित श्री आर.सी.शर्मा से क्या बातचीत की। मैं तो अपने मालिक का परमात्म रूप देख रहा था और उसी में मस्त था। ऐसा नशा कई दिनों तक कायम रहा।

फिर भी कठोर हकीकत तो सामने थी ही। सामान्य अवस्था में तो इस बात का अहसास था ही कि गुरूदेव परदा ले चुके हैं और श्री रामदत्त जी मिश्रा गुरूपद पर प्रतिष्ठित किये गये हैं। मैं अपने गुरूदेव के साथ इतना अधिक एकात्म हो चुका था कि अब अचानक ही रामदत्त जी को गुरू स्वीकार करना बहुत कठिन था। मेरे इस असमंजस को भी आपने ही दूर किया। मैं दो दिन बाद समाधि कक्ष में मालिक की इबादत कर रहा था। वहां वर्तमान गुरू महाराज रामदत्त जी मिश्रा के अनेक सूक्ष्म रूप नज़र आये-समाधि से ऊपर उठते हुए और गुरूदेव के साथ बैठे हुए। इबादत करके बाहर आया तो गुरू महाराज ने टोका कि भाई साहब! असमंजस छोड़ो, भीतर सारी माया एक ही है। फिर थोड़े दिनों बाद उसी समाधि कक्ष में रामजी के दो विराट रूप नज़र आये-एक बहुत लम्बा और दूसरा विशालकाय। मैंने देखा कि अनेक लोग उस विराट रुप में समाते जा रहे हैं। तत्पश्चात उनका वह रूप समाधि में ही उतर गया। इस तरह गुरूदेव ने मेरा आन्तरिक असमंजस समाप्त कर दिया।

थोड़े दिन यों ही गुज़र गये। पुनः एक दिन समाधि कक्ष में एक अलग ही रूहानी माहौल दिखाई दिया। समाधि से उठता हुआ वही लाल कमल जो पूरी समाधि पर छा गया था। वही गुलाबी बादल लेकिन इस बार उस पर सुनहरी रोशनी बरस रही थी। समाधि की जड़ में लहराती हुई नीली रोशनी की झील, फिर उस पर हरे प्रकाश की लहर, फिर लाल, फिर श्वेत, फिर नीली, फिर सुनहरी आलोक; साथ में सुनाई देती हुई आवाज़, अब यह देखो, अब यह देखो, अब यह देखो! मुझ पर पूरी तरह मदहोशी छाई हुई थी। मालिक विविध प्रकाश रुपों में अपने दर्शन देकर मुझे निहाल किये जा रहे थे। मैं उसी मदहोशी में वहाँ से उठा और रामजी महाराज के पास पहुँच गया। आपने मुझे देखते ही गले लगाकर बाहों में भींच लिया। फिर बहुत देर तक मेरे सिर पर हाथ फिराते रहे, गालों को सहलाते रहे, बार-बार मेरा माथा चूमने लगे। उस दिन भी मालिक का रहमोकरम इतना विलक्षण था कि उसे याद कर-करके आज भी भाव विभोर हो जाता हूँ।

पता नहीं कौनसा दिन था। मुझे देवली जाना था। बैग उठा कर मैं दरवाजे की तरफ बढ़ा, तभी इच्छा हुई कि आज नहीं जाऊँ। मैं ठिठका और तभी पत्नी ने बैग मेरे कंधे से उतार कर रख दिया। वह भी बोली-कल चले जाना। उस समय तक मुझे नहीं पता कि ऐसा क्यों हुआ। आठ बजे मैं आश्रम चला गया और समाधि कक्ष में बैठ गया। वहाँ उत्सव जैसी ताज़गी थी और मैं रूहानी दुनियाँ में खो गया। घण्टे भर बाद बाहर आया तो अनेक गुरू भाईयों को देखकर चौंका महफिल खाने में भी दरी पर चांदनी बिछी हुई थी। ज्ञात हुआ कि आज गुरूदेव की दरगाह का शिलान्यास है।

अब मेरी समझ में आया कि मालिक ने मुझे देवली जाने से क्यों रोका। वे इस महत्वपूर्ण घड़ी में मेरी भी सहभागिता चाहते थे।

उधर कार्यक्रम शुरू हो गया। मैं काफी दूर चुपचाप बैठा था। फिर आज्ञाचक्र पर दबाव बढा, ध्यान चढ़ने लगा। शिलान्यास स्थल पर बुज़ुर्ग फकीरों के दर्शन होने लगे। चारों तरफ का परिवेश नूरानी हो गया। वहाँ अन्य कई रूहों की आवाजाही चलती रही। उस दिन शाम चार बजे तक वहाँ ज़र्रे-ज़र्रे से मालिक का नूर बरस रहा था। मैं वहाँ प्रतिपल यही सोचता रहा कि गुरू की यह भी कैसी कृपा है। किसी ने कुछ नहीं बताया था किन्तु आप मुझे बुलाना चाहते थे और बुला लिया; बुलाकर निहाल कर दिया। फिर राम जी महाराज ने अपनी प्लेट से नाश्ता कराया और भोजन भी स्वयं के पास बैठाकर कराया था। जिसे गुरू चाहे, उसे कौन दूर कर सकता है।

एक बार रात में इबादत के दौरान दो घण्टे तक श्री रामदत्त जी महाराज मेरे साथ रहे। ध्यान चढ़ता और वे दिख जाते, सुमिरन की धुन परवान चढ़ती कि आप आ जाते; मैं आखें खोलता तो भी आपके दर्शन होते; बन्द करता तो भी आप सामने रहते। आप मुझे कहाँ ले जा रहे थे, पता नहीं। थोड़े दिन बाद आश्रम में आप बोले-मुझे पकड़ने की कोशिश मत करना। मैं इस बात का भी मर्म नहीं समझा। ध्यानावस्था में एक बार फिर रामदत्त जी महाराज मुझे कहीं से अपने साथ लाए। आप एक जगह ठहरकर बोले-मैं आपकी रूह को ऊपर ले गया था किन्तु वहाँ जवाब मिला कि अभी ठहरो; शिवजी के सुर अधूरे हैं। फिर आपने कहा-भाई साहब! यहीं ठहरों; मैं आपके लिए भजन करता हूँ। बाद में आश्रम में आपने समझाया कि अपनी सुर-साधना को और अधिक पक्की करूँ।

हुजूर का भण्डारा था। मैं शाम के पाँच बजे किसी के साथ वहाँ चला गया। स्नान नहीं किया था। वहाँ बाहर दालान में लगभग एक घंटे तक गपशप मारता रहा। भीतर मजार पर जाने से लगातार कोई रोक रहा था। फिर मालिक ने चेताया-नहाए बिना ही आ गये। मैं तो धक्क रह गया कि अब क्या करूँ? फिर

पता नहीं कैसे घर जाने का साधन बैठ गया। मैं स्नान करके तैयार हुआ। रात के साढ़े आठ बज चुके थे। तभी वहाँ से मेरा भतीजा निककू मुझे लेने के लिए आ गया। तब मैं हुजूर के रोज़े पर हाजिरी दे सका। उस रात महफिल के दौरान पूरा महफिल खाना मानो पारदर्शी रूहानी चादर में लिपटा हुआ था।

गरूदेव के पर्दानशीं होने के बाद उनका पहला जन्मदिन आया। समाधिकक्ष के बाहर वाले दालान में सुबह के वक्त महफिल रखी गई। पहले दौर के वक्त मैं समाधिकक्ष में ही बैठा रहा-गुरूदेव समाधि पर बैठे-बैठे झूम रहे थे; पूरा कक्ष चमकीले प्रकाश से भरा हुआ था। वहाँ मैने कैसे-कैसे कलाम सुने। वह मालिक की अनूठी कृपा थी। फिर जल-पान के वक्त महाराज रामदत्त जी ने नाश्ते की अपनी प्लेट मुझे दी और कहा-अब मेरे पास ही बैठना। महफिल के दूसरे दौर में उनके आदेश से गुरूदत्त जी ने मुझे बुलाकर अपने पास गद्दी पर बिठाया। सबके सामने मुझे इतनी इज्ज़त बख्शी गई कि मैं मन-ही-मन रोता रहा। फिर खुली आँखों से वहाँ की रूहानियत को देखते रहने का दौर चलता रहा। वहाँ मैं तो अनुपस्थित था-बस, मालिक थे, उनकी फिजां थी, कव्वाली के कलाम थे, अमृत वर्षा थी, अनिर्वचनीय सुकून था, कुल मिलाकर कोई और ही दुनिया थी। शाम को मुन्नालाल जी मित्तल के आवास पर भोजन और महफिल का आयोजन था। मैं अपने घर ही ठहर गया। भोजन का भोग लगते समय मालिक बोले-दिल छोटा क्यों करते हो? मैं यहाँ भी हूँ; भोजन करो तथा इबादत में बैठ जाओ। भोजन में मालिक की नज़र मिली हुई थी। फिर इबादत के दौरान मैं गुम हो गया। गुरूदेव के साथ मस्ती के सागर में गोते लगाता रहा। आज सोचता हूँ कि सद्गुरू की यह कैसी दया है जो स्वतः ही प्रवाहित होती रहती है और मुरीद को अलमस्त कर देती है।

गुरुवार का दिन था। सुबह पूजा के वक्त भोग लगाने के लिए कुछ भी नहीं था। किसी अन्तःप्रेरणा से मैने फ्रिज में से फ्रूट ककड़ी निकाली और उसी का भोग लगा दिया। मैने इतनी स्वादिष्ट फ्रूट ककड़ी अपने जीवन में कभी नहीं खाई थी।

एक बार मैं दोपहर तीन बजे के लगभग आस्ताने गया। पाँच बजे तक इबादत की। उठने लगा तो हुजूर बोले-बेटा चाय पीकर जाना। उन दिनो चाचा रजनीकांत जी से मेरी कोई नज़दीकी नहीं थी क्योंकि मैं कभी-कभी ही वहाँ जाता था। इसलिए चाय के लिए कहना तो सम्भव ही नहीं था। बाहर आकर मैने उन्हें प्रणाम किया तो आपने फरमाया कि शिवजी बैठो; चाय तैयार है। इसे क्या कहूँ? मेरे पास शब्द नहीं हैं। हुजूर के प्रति नतमस्तक होते हुए मैने चाय पी। तब चाचाजी ने पुनः कहा-चाय कैसी लगी? तब मैं चाचाजी की अन्तर्दृष्टि पर चौंका। मतलब यह कि उन्हें हुजूर ने चाय के लिए कहा और उनके सवाल में उन्हीं का यह कथन निहित था कि चाय बहुत स्वादिष्ट लगी ना। यह बाबा साहब की तुम पर कृपा है। वाह रे मेरे मालिक; मेरे जैसे मामूली साधक को उन्होंने कितना मान दिया था।

पिताजी तब देह में मौजूद थे। वे लगभग सौ मुरीदों को लेकर झाँसी गये थे। मैं और श्री आर. सी. शर्मा स्थान पर रुके हुए थे। स्थान पर मैं पाँच घण्टे तक साधना की आरज़ू लेकर गया था। दसरे दिन ही दोपहर तीन बजे से संध्या गए साढ़े आठ बजे तक मैं इबादत में स्थिर रहा। मन की मुराद मालिक ने पूरी की। फिर जिस दिन झाँसी में भंडारा था उस रोज सुबह मैने रमेश चाचा को कहा-यहाँ भी हम कुछ बनाएँ। वे बोले-देखेंगे। सुबह ग्यारह बजे श्री तेजपाल जी दूध व चावल ले कर आ गये। खीर बन गई। भोग लगाया तो ऐसा रोमांच आया कि तन-मन सिहर गया। मैं समझ गया कि कलन्दर हाफिज मोहम्मद इब्राहीम साहब

के भंडारे की नीयत से बनाये गये भोजन का भोग बुजुर्गों ने स्वीकार कर लिया है। उस दिन के भोजन की अलौकिक मिठास मुझे आज भी याद है।

गुरूदेव के प्रस्थान के बाद का वाकया है-थोड़े दिन ऐसे गुज़रे कि मुझ पर ध्यान की खुमारी नहीं चढ़ती थी। मेरे मन में बारबार यह शंका उठने लगी कि गुरूदेव ने मुझे भुला दिया है। तब आपने गुरू महाराज रामदत्त जी को कहा-शिवजी पर हर पल मेरी नज़र है फिर भी वे सोचते हैं कि मैं उन्हें भूल गया हूँ। राम जी महाराज ने यह बात मुझे बताई तो मैं शर्मिन्दा हुआ। उसके थोड़े दिन बाद ही जो कुछ घटित हुआ उसने खुलासा कर दिया कि गुरूदेव प्रतिक्षण मेरे पर निगेहबान हैं। इसी ब्यावर रोड पर मैं स्कूटी चला रहा था। स्पीड का पता नहीं कैसे पचास के आस-पास पहुंच गई। तभी एक सफेद कुत्ता सामने आ गया। जम कर ब्रेक लगायें तो भी गाड़ी उस पर चढ़ कर दाहिनी तरफ उलट गई। मैं भी गिर गया। मेरे सिर से कोई एक फीट दूर धनधनाते हुए तीन ट्रक निकल गए। आसपास शोर मच गया। मै उठा तो देखा कि मेरे सिर के पास साईंबाबा की तस्वीर सड़क पर पड़ी थी जो कि निश्चय ही मेरी जेब से निकल कर गिरी थी। उन दिनों मेरी जेब में एक प्रयोग के तहत यह तस्वीर रखी रहती थी। दो आदमियों ने आकर स्कूटी उठाई किन्तु तस्वीर को हाथ नहीं लगाया; वे बोले कि अभी हम नहाए हुए नहीं हैं। तस्वीर मैंने ही उठा कर जेब में रखी। कुत्ता कहाँ गायब हो गया, पता नही। मैं लौट कर आश्रम आया और समाधि कक्ष में बैठ गया। वहाँ आपने फरमाया कि अध्यात्म के एक स्तर से ऊपर सारे संत-महात्मा एक ही चेतन शक्ति का रुप होते हैं। वे आपस में एक दूसरे के साधक की रक्षा करते हैं और नज़र भी दे देते हैं। तुम आज का यह दिन याद रखना और आगे के जीवन को केवल मालिक की इबादत में ही खर्च करना। मैं प्रयोगिक तौर पर भी समझ गया कि हर घड़ी, आपकी मुझ पर कृपा नजर है। इसके बाद तो ऐसे

सैकड़ों प्रसंग हैं जो उनकी नज़र के गवाह हैं। क्या-क्या लिखूँ, कभी टोकते हैं, कभी रोकते हैं, समझाते हैं, कभी झिड़कते हैं, कभी आश्वस्त करते हैं, कभी प्रेरित करते हैं आदि आदि।

उवैस करणी साहब का दिन था लेकिन मुझे जानकारी नहीं थी। बुधवार था उस दिन। सिर में तेज़ दर्द के कारण मैं आश्रम जाना टाल रहा था। गुरू भैय्या कार लेकर घर आ गये तो फिर जाना ही पड़ा। उस दिन मैं समाधि कक्ष में रोज की तरह बैठा नहीं, प्रणाम करके आ गया और भैय्या के कमरे में बैठ गया। भैय्या इबादत के लिए समाधि कक्ष में गये तो मुझे आश्चर्य हुआ क्योंकि वे बुधवार की शाम कभी भी ऐसा नहीं करते हैं। खैर, मैं वहीं बैठे-बैठे ध्यान में डूबता-उतरता रहा। बहुत मजा आ रहा था। एक रूहानी उपस्थिति का एहसास हो रहा था। कोई पौन घण्टे बाद गुरू भैय्या लौटे। मैं भी कोशिश करके नीचे उतर गया। वे बोले कि आज उवैस करणी साहब का दिन है इसलिए मैं इबादत के लिए भीतर चला गया था लेकिन पिताजी यहाँ आपके पास आ गये। पता नहीं ऐसा क्यों हुआ। अब तो मैं सारी बात समझ गया। यदि मुझे उक्त जानकारी होती तो मैं भी समाधि कक्ष में बैठ कर इबादत का आनन्द लेता। किन्तु मेरे मालिक की उदारता देखो कि वे बाहर आकर मेरे पास बैठ गए, भरपूर मज़े कराए और अपनी उपस्थिति की अनुभूति करा गए।

राम जी महाराज की इजाज़त से मैं भी गुरूदेव के 'गुसल' में सहभागी होने लगा था। इस कार्य को सात लोग पहले से ही सम्पन्न कर रहे थे। मैं आठवाँ था। दूसरे गुरूवार को गुसल के दौरान आपने फरमाया कि शिवजी! दूध से भरे हुए कटोरे पर फूल की पत्ती की तरह रह कर अपना काम करते रहो, बाकी हम पर छोड़ दो। फिर एक दिन गुसल के पश्चात फाता के वक्त मैने देखा कि आप फूलों की चादर पर बहुत ही लुभावने रूप में बैठे हैं; नीली व पीली रोशनी के

गोले चारों तरफ घूम रहे हैं। एक बार देखा कि आप केसरिया पगड़ी बाँधे, टेक लगाकर लेटे हुए हैं। समाधि के जिस ऊँचे स्थान पर माला पहिनाते हैं वहाँ तो नजर टिकते ही आपकी मूरत साकार होती है। कभी उठने लगता हूँ तो फरमाते हैं; बैठे रहो और कभी बैठे रहना चाहता हूँ तो बोलते हैं-अब राम जी के पास जाओ या चलो, घर जाओ। अनेक बार ऐसा हुआ कि बाबासाहब ने और आपने भी मुझे समाधि-कक्ष से उठाकर इतने सही वक्त पर घर भेजा कि मैं स्तब्ध रह जाता था-कभी गैस वाला खड़ा मिलता, कभी पानी आता हुआ होता, कभी मेहमान प्रतीक्षा में मिलते और कभी समय से पहले ही अनपेक्षित तौर पर मेरी पत्नी स्कूल से लौटी हुई मिलती (घर की चाबी जिस दिन मेरे पास होती तभी ऐसा होता था)। मैने कहा ना कि क्या-क्या लिखूँ? मैं तो अब आपके ही सुपरविजन में जीवन का प्रत्येक लम्हा गुज़ार रहा हूँ।

सद्गुरू इस तरह रूहानी गुजरानों के जरिए साधक के आनन्द को तो बढ़ाता ही है, साथ ही साधना की राह पर भी उसे और आगे ले जाता है। ये सारे रुहानी गुजरान वस्तुत: मेरे पास मेरे मालिक की धरोहर हैं।

8. कृपा-प्रवाह

मैं जानता हूँ कि यह अध्याय लिखने की ज़रूरत नहीं हैं क्योंकि जहाँ गुरू है वहाँ कृपा तो होती ही है। फिर भी मन जब भीतर से अतिशय प्रसन्न होता है तो बोले बिना नहीं रहा जाता। मेरे जैसे कठोर बुद्धिवादी व्यक्ति को अदम्य, आस्थावादी बना देना ही आपकी अविस्मरणीय कृपा है। मैं जब पहली बार आपसे मिला तो समान्य शिष्टाचार का निर्वाह करते हुए नमस्ते की थी; तब मन में यह विचार था कि जिस दिन आपकी रूहानी शख्सियत को देख लूँगा, तब आपके चरणों का अपने सिर से स्पर्श करूँगा। आना-जाना शुरु हो गया। "पूज्य गुरूदेव" किताब लिख दी और हाथ बढ़ा कर चरण तक ले जाने वाले अन्दाज में प्रणाम करने लगा। फिर शोध संस्थान खुल गया, मुझे बहुत सम्मान दिया गया, गुरूदेव के साथ दो-दो घण्टे वाली वार्ता का दौर चलने लगा; तब तक थोड़ी दूर घुटनों के बल बैठकर सिर झुकाते हए प्रणाम करने लगा। दिन बीत गए, आकर्षण बढ़ने लगा, कुछ ऐसे गुजरान भी हुए जो आपकी रूहानी ताकत की झलकियाँ दिखाते थे और एक दिन बैठे-बैठे ही जब मुझ पर नशा छा गया तो मैं भीतर तक हिल गया; आपकी रूहानियत मेरे सामने साकार हो गई। मन ने कहा कि जिसके ख्याल में या नज़र में ही इतनी ताकत है उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व कितना शक्तिमान होगा। जब घर लौटने के लिए उठा तो श्रद्धापूर्वक आपके चरणों में सिर रख दिया। इसके बाद तो जो कुछ होता रहा, मैं लिख चुका हूँ। जाहिरी तौर पर मैं आपके चरणों में सिर रखकर ही प्रणाम करता था लेकिन अन्तरमन में मैं आपको साष्टांग प्रणाम व सर्वांग प्रणाम ही करता रहा। आज तो मेरा वजूद ही प्रणाम बन कर आपकी इबादत में धड़कता रहता है।

मैं बेवजह ही अपने एक उच्चाधिकारी की बदमिजाज़ी का शिकार हो गया था। उसने मुझे सस्पेन्ड करने की करने की ठान ली और कॉलेज से कार्यमुक्त करके जयपुर बुला लिया। तय था कि मेरी पोस्टिंग भी किसी और जगह की जाएगी। मैने सच्ची बात गुरूदेव को बता दी और शांत बैठ गया। पहला कमाल तो यह हुआ कि चार दिन बाद ही वापस देवली कॉलेज में ही नियुक्त कर दिया गया। ऐसा पहले कभी भी किसी अन्य मामले में नहीं हुआ था। जयपुर के एक अधिकारी ने मुझे कहा-यह ऑफिसर छह माह तक तुम्हारी यहीं रगड़ाई करेगा। किन्तु मैं जानता था कि मेरे गुरूदेव के मुकाबले वह ऑफिसर शून्य है। मेरे देवली कॉलेज में लौट आने के बाद उसने सोलह सी.सी. का नोटिस देने की तैयारी की। मेरे क्षेत्र के सांसद, विधायक, जिलाधीश व एस.डी.एम के पास मेरी शिकायत भेजी गई। प्राचार्य को बार-बार कहा जाता कि मुझे उक्त नोटिस दे। फिर मुझे स्वप्न में गुरूदेव दिखे जिन्होंने उस अधिकारी का नाम लेते हुए कहा कि यह कौन है? मैने बता दिया। आप उस वक्त कड़ाही साफ कर रहे थे और राम भैय्या पास में बैठे थे। मैने अगले रविवार को यह बात राम जी के सामने बताई। वे बोले-इसका मतलब यह कि मालिक ने आपका मामला साफ कर दिया है। आपका कुछ नहीं बिगड़ेगा। मैं निश्चिंत हो गया।

उधर जयपुर से खबरें आती रहती थी कि शिव शर्मा का बचना मुश्किल है। यह बात लगभग पूरे प्रांत के कॉलेजों तक फैल गई। अन्ततः उक्त अधिकारी ने मुझे नोटिस थमा ही दिया। हमारे प्राचार्य जी भी घबरा गए। गुरूदेव ने केवल दस पंक्तियों का जवाब लिखवाया। उस एक ही जवाब से मामला निरस्त हो गया। ऐसी होती है गुरूकृपा। मेरे प्राचार्य ने अपने मुँह से कहा कि गुरुदेव ने ही शिवजी को बचाया है।

मेरी भतीजी के यूरिन में शत प्रतिशत खून जाने लगा था। रोग विशेषज्ञ ने हाथ खड़े कर दिये। जयपुर के विशेषज्ञ ने बायोप्सी के लिए तारीख दे दी। मैंने उसे रोका और मालिक के पास ले गया। उन्होने राम जी को कहा कि देख लो। रामजी ने पिताजी की नज़र के आवरण में उपचार किया। बच्ची ठीक हो गई। स्थानीय विशेषज्ञ ने कहा-इट इज़ मिरेकल।

मैं सिरदर्द से बहुत परेशान था। डॉ. देवराज भी विस्मित कि इतना तेज़ सिर दर्द क्यों होता है। एक दिन गुरूदेव के पास बैठा था। उन्हें जाने क्या मौज चढ़ी कि बोले-लो तुम्हारा सिर दर्द देख लें। पास बुलाकर मेरे सिर पर तीन बार हाथ फेरा। उसके बाद तो मैं सिरदर्द को भूल ही गया।

मैं रिफ्रेशर कोर्स में बीस दिन के लिए जयपुर गया था। वहाँ लगभग साठ व्याख्याता थे। कोर्स कॉर्डिनेटर मेरे सामने ही बैठता था। साढ़े दस-ग्यारह बजे के लगभग मुझे ध्यान की खुमारी चढ़ जाती और आँखें बन्द हो जाती। दो दिन शांत रहने के बाद वह बोला-मेरा आग्रह है कि आप लोग यहाँ नींद नहीं निकालें। मैं समझ गया कि मुझे ही टोका गया है। रविवार को आकर यह बात मैने गुरूदेव को बताई कि अब मैं क्या करूँ? वह मुझे फेल कर देगा। वहीं रमेश चाचा भी बैठे थे। वे हँसते हए बोले-आप क्या चाहते हो? मैने कहा-ए ग्रेड में यह कोर्स पूरा करना चाहता हूँ। मालिक हँस दिए। मैं लौट गया। अंतिम दिन परीक्षा हुई मुझे नहीं पता कि मैने किस सवाल के उत्तर का कौनसा विकल्प टिक किया। परिणाम जब सामने आया तो मुझे 'ए' ग्रेड ही मिली थी। सच है कि दोनों जहाँ के मालिक के लिए कुछ भी असम्भव नहीं।

मैं सोमलपर से स्कूटी पर लौट रहा था। सीधी ढलान पर भी जाने कैसे स्कूटी उलट गई। मेरे मामूली खरोंच आई लेकिन स्कूटी लॉक हो गयी थी। मैं आश्चर्य चकित रह गया। फिर लॉक खोल कर गाड़ी स्टार्ट की। थोडी सी दूर पर एक

छोटा सा बच्चा खड़ा-खड़ा मुस्करा रहा था। जब उसके निकट से गुज़रा तो वह बोला- क्यों, नींद आ गई थी क्या?

जब मैने स्कूटी चलाना शुरु किया तो हैलमेट नहीं लगाता था। सुभाष नगर चुंगी चौकी पर यातायात पुलिस वाला प्रायः जाते और आते समय मिलता ही था लेकिन मुझे कभी नहीं टोका। एक बार तो बड़ी सब्जी मण्डी के सामने पुलिस वालों की पूरी जीप खड़ी थी। मैं अपनी धुन में लीन था। जीप के एकदम पास से निकलते हुए मैंने उन्हें देखा पर उन्होंने भी मुझे नही टोका। कभी-कभी ऐसा भी होता कि हेलमेट स्कूटी के हैण्डल पर लटका रहता और मुझे लगता कि मेरे सिर पर है। मैं शहर के दो-दो व्यस्त चौराहे पार कर जाता जहाँ से बच कर निकलना असम्भव है। यह सब कुछ मालिक की कृपा थी, हर पल उनकी नजर का सबूत थी।

मैं आश्रम गया हुआ था और संध्या समय लौटा। सुबह सोमलपुर जाने के लिए स्कूटी निकाली तो देखा कि अगले पहिये की वैक्यूम नली कटी हुई थी। मैं आश्चर्य चकित रह गया कि पिछली शाम आश्रम से यहाँ तक कैसे आ गया। गाड़ी को पैदल घसीट कर मैकेनिक के पास ले गया। उसे जब यह बात बताई तो वह बोला-क्यों बेवकूफ बनाते हो भाई! खड़ी हुई गाड़ी की नली नहीं कटती है। यह तो पूरी-की-पूरी कट चुकी है, मैं कैसे मान लूँ कि आप पिछली शाम यही स्कूटी चला कर आये थे।

आश्रम आते-जाते लगभग चार साल गुज़र गये थे। गुरुदेव के साथ छोटी-मोटी समस्याओं से सम्बन्धित प्रश्न-उत्तर चलते ही रहते थे। रूहानियत से सम्बन्धित सवाल भी मैं पूछता ही रहता था। एक दिन आपने टोका कि कब तक मुँह से बात करते रहोगे? अब अपने भीतर से बात किया करो। हम तुम्हें सायंकाल चार से पाँच बजे का समय देते है। मैं कुछ समझा नहीं और सोचा कि मौन सवालों

का जवाब आप मेरे भीतर कैसे देगें? मैं यह तो सुनता रहता था कि बाबा साहेब गुरुदेव के सामने आकर बात करते हैं। खैर, मेरे साथ गुरू के फैज़ का एक नया दौर शुरू हुआ। भीतर सवाल-जवाब होने लगे लेकिन मैं यकीन नहीं कर पाता था। आश्रम जाता तब गुरूदेव को कहता-यह भी संभव है कि मेरे सवाल का जवाब खुद मैं ही देता हूँ। तब आपने समझाया कि जब हमने कह दिया कि हम तुमसे मौन संवाद रखेंगे तो हमारी बात पर विश्वास करो। यह भी समझ लो कि जब गुरु अपने शिष्य पर नज़र रखने लगता है तो केवल उसके बाहर वाली दुनिया को ही नहीं देखता है बल्कि उसके भीतर भी गहरे तक अपनी नज़र रखता है। धीरे-धीरे मुझे इसका अहसास होने लगा। देवली में घटित कछ प्रसंगो का वर्णन मैं पीछे कर चुका हूँ जो आपकी ऐसी ही कृपा के परिणाम थे। एक बार मैनें आश्रम जाने का बहाना बना कर कॉलेज से छुट्टी ली। कॉलेज से बाहर निकलते ही मेरे पाइल्स वाली जगह पर अचानक ही तेज़ दर्द शुरु हो गया। दो कदम चलना भी मुश्किल हो गया था। तभी भीतर आवाज उठी-गुरू का नाम लेकर झूठ बोलते हो। मैनें तत्काल मालिक से माफी मांगी, तब पुनः भीतर आवाज आई-जाकर मेडिकल स्टोर से अमुक ट्यूब लो, घर जाकर ट्यूब लगाओ और फिर गाड़ी में बैठना। मुझे काफी आराम मिल गया। दूसरे दिन आश्रम गया तो आपने चुटकी ली-कहो शिवजी! क्या हाल हैं?

एक प्रकाशक मेरी अजमेर वाली किताब के विषय में बात करना चाहता था। उसने आश्रम फोन किया। गुरूदेव ने उसे मेरा फोन नं. दिया। तब तक मैं देवली जाने के लिए बस स्टैण्ड पहुँच गया था। प्रकाशक ने फोन किया किन्तु कॉल मैच्योर नही हुई। वह मेरे घर पहुँच गया। उधर बस स्टैण्ड पर एक बस छूट गई; दूसरी का समय घण्टे भर बाद था। मुझे गुरूदेव भीतर फोर्स करने लगे कि घर जाओ। मैं असमंजस में था कि क्या करूँ? अन्ततः मैं घर चला गया। वहाँ

प्रकाशक बन्धु मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनसे बातचीत करने के बाद वापिस प्रस्थान किया। देवली वाले कमरे की चाबी यहाँ घर पर नहीं मिल रही थी। उस छल्ले में स्टॉफ रूम वाली अलमारी की चाबी भी थी। परिवार में सबने ढूंढ ली पर चाबी नही मिली। मैने मालिक का ध्यान किया आप बोले-कटोरदान में देखो। देखा तो कटोरदान में चाबी पड़ी थी।

मेरी पत्नी सरकारी स्कूल में अध्यापिका हैं। समानीकरण में उनका तबादला कहीं और होना था। इससे पारिवारिक परेशानी बढ़ सकती थी। मन ही मन गुरूदेव से अरदास की। आप बोले-"कुछ मत करो प्यारे और मालिक का खेल देखो।" आश्चर्य कि उस बार उक्त आदेश राज्य स्तर पर रद्द हो गया।

कोई रूहानी गुजरान मैं किसी गुरू भाई के सामने बोलने वाला था। आपने तत्काल टोका-'कोई जरूरत नहीं है, चुप रहो।'

राज्य सरकार के एक उच्चाधिकारी मेरे मित्र हैं। मेरे बेटे के मूल निवास प्रमाण पत्र का काम था जो लगातार अटक रहा था। मैंने उक्त अधिकारी को फोन करने का विचार किया लेकिन आपने मेरे भीतर टोका-'नहीं, उनको भूल जाओ! अरविन्द को बोल दो। फिर अरविन्द गर्ग ने मेरे साथ जाकर काम करा दिया।

मेरे एक रिश्तेदार का बेटा सी.ए. की परीक्षा में फेल हा गया था। जो पेपर ज्यादा अच्छे हुए उसमें भी कम अंक मिले। मैने अरदास की। आप बोले-उसे कहो कि रोज़ हनुमान चालीसा के ग्यारह पाठ करे। मुझे बाद में पता चला कि वह हनुमान जी में भक्ति भाव रखता था। उस बच्चे ने गुरूदेव के आदेश का पालन किया। परिणामस्वरूप रिवेल्यूएशन में पास हो गया। देश भर में कुल चार बच्चे पुनर्मल्यांकन के माध्यम से पास हुए थे। इसमें उल्लेखनीय बात यह है कि आपने ध्यानावस्था में भीतर उतर कर उस बच्चे के लिए रास्ता सुझाया।

ऐसे भी ढेर सारे प्रसंग हैं, हर रोज गुजरने वाले प्रसंग हैं। निष्कर्ष केवल यही कि-

वो नजर डाली कि सारी होशियारी छीन ली।
तीर वो मारा कि पैबस्ते रगे जाँ हो गया॥

वस्तुतः साधना के एक स्तर पर अपने गुरू के साथ एक रूपता स्थापित हो जाती है। तब सांसारिक जीवन का भी प्रत्येक कार्य मालिक की कृपा जैसा प्रतीत होने लगता है। तब साधक का व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है। यदि वह प्रतिपल इस सच्चाई को याद रखे तो उसका बेड़ा पार हो जाता है।

9. और मुझे शब्द धुन से जोड़ दिया

गुरु कृपा बरसती रही, मैं भीगता रहा, मस्ती में झूमता रहा। बाहर-भीतर चुप्पी छाने लगी। मैं आत्मलीन होता गया। इसी चुप्पी में धुन गूंजने लगी-मिश्री जैसी मीठी और मालिक के ललाट पर लगे केसर-चन्दन जैसी सुहावनी।

मैं हजूर के आस्ताने में ध्यानस्थ बैठा था। अचानक ही कोई मीठी धुन गूंजने लगी; इतनी मीठी कि मैं उसी में खो गया। फिर तो बार-बार ऐसा होने लगा। कोई मंत्र उस धुन में गूंजता था लेकिन वह मेरी समझ से बाहर था। उस धुन के कारण दीक्षा-मंत्र का जाप नहीं हो पाता था। कुछ अर्से बाद गुरू महाराज रामदत्त जी ने कहा कि भाई साहब! पिताजी ने आपके लिए नया संकेत दिया है; आप पहले वाले मंत्र का जाप तो धीरे-धीरे कम करते जाओ और मैं जो नया मंत्र दे रहा हूँ, उसका जाप शुरु करो। यह आपको आगे के मुकामों तक ले जाएगा। उस दिन मुझे दूसरी बार वरदान मिला था। अब गुरूदेव के अलावा रामजी महाराज भी कृपा-निधान के रूप में सामने आ गए।

मैने जब नये मंत्र का जाप शुरु किया तो उपर्युक्त मीठी धुन उसी में समाहित हो गई। मतलब यह है कि गुरूदेव और बाबा हुजूर की संयुक्त कृपा से मुझे आगे मिलने वाले इस मंत्र का उन दिनों पूर्वाभास करा दिया था। इस नये मंत्र ने मुझे शब्द-धुन के साथ जोड़ दिया। आरम्भ में यह अलग-अलग धुनों के साथ चलता था। तब समझ में नहीं आता था कि उनमें से किस धुन को पकडूं। थोड़े समय बाद ही रामजी महाराज ने मुझे चिल्ले पर बैठा दिया। इस अनुष्ठान से नये मंत्र में परिपक्वता आई और धुन भी निश्चित हो गई। गुरू महाराज ने बताया कि मेरा चिल्ला कबूल हुआ। चिल्ले के दौरान भी अनेक दिव्य अनुभूतियाँ होती रहीं।

गुरु साहब की दया से अब नाम-धुन हर वक्त गूंजने लगी। मौन जाप भी लगभग छूट गया। मैं साधना के वक्त चुपचाप बैठ जाता और उस नाम-धुन को सुनता रहता। सुनते-सुनते उसी में डूब जाता, सुध-बुध खो जाती। मस्ती ऐसी चढ़ती कि उठने के बाद भी मैं झूमता रहता। मुंह पर जैसे ताला लग जाता। पलकें खुलती नहीं थीं। दीन-दुनियाँ से बेखबर रह कर इसी मस्ती में पड़े रहने की इच्छा प्रबल होती जा रही थी।

इसके पश्चात वह स्थिति आई कि आँखें खुली रहती, धुन गूँजती रहती, धुन में नाम चलता रहता, आरती-कीर्तन व कव्वाली के अनजाने सुर सुनाई देते रहते। किसी से भी बात करने की इच्छा नहीं होती थी। भूख नहीं लगती थी। भोग लगाते ही पेट भर जाता था। रात में दो घण्टे से ज्यादा नहीं लेट पाता; उस वक्त भी नाम-धुन चलती रहती और रूहानी गुजरान घटित होते रहते थे।

धीरे-धीरे नाम-धुन तेज़ होने लगी। बहुत तेज़ गूंजने लगी। बंद पलकों में बार-बार उजाला कौंध जाता। रामजी महाराज के मौन सन्देश मिलने लगे। उनकी रूहानी उपस्थिति अक्सर महसूस होती रहती। समाधि से मौन संवाद शुरू हो गया। वहाँ हर सवाल का जवाब मिलने लगा। गुरूदेव आध्यात्मिक प्रश्नों को रूहानी तौर पर समझाने लगे। मैं जहाँ कहीं भी कोई बात करता, राम जी महाराज तक वह रूहानी प्रक्रिया से पहुँच जाती। अब मैं और अधिक चुप रहने लगा। नाम-धुन के साथ-साथ घण्टे की ध्वनि व बांसुरी की तान भी गूंजने लगी। कई बार स्वयं को अनजाने लोक में देखता लेकिन समझ में कुछ नहीं आता था। अब मन के ख्याल, व्यवहार में घटित होने लगे। अत: विचारों से बचने लगा। जब कोई काम नहीं होता तो भीतर तेज सुर में गूँजती नाम-धुन को सुनने लगता

था। रोज दीया-बत्ती के समय मालिक से प्रार्थना करता था कि मन को स्थिर कर दें जिससे कि कोई विचार आए ही नहीं।

दरूद शरीफ व आयते करीमा का पाठ करते वक़्त इनकी भी धुन स्वत: चलने लगती थी। अब फिर से एक अनजानी धुन भी गूँजने लगी है, बीच-बीच में तेज़ हो जाती है। समझ में नहीं आती। बस, फिलहाल मैं यहाँ ठहरा हुआ हूँ। उधर समाधि आदेश देती है कि मैं अब गुरू महाराज रामदत्त जी के पास ही बैठा करूँ और वे जो भी काम बताएँ वह किया करूँ।

खैर, गुरू कृपा से इस तरह मैं यह भी समझ पाया कि नाम को स्वयं के भीतर सुनना किसे कहते हैं? यह कैसे घटित होता है और इसका स्वरूप क्या होता है? साधक की सुरत, धुन के माध्यम से शब्द के साथ कैसे जुड़ती है; इसका भी अनुभव किया। नाम-शब्द भीतर कैसे धड़कता है, यह जाना। हृदय-स्पन्दन के साथ नाम कैसे संयुक्त हो जाता है, इसे प्रत्यक्ष किया। इतने कम समय में इतनी ज़्यादा कृपा! मैं तो उनके चरणों में सौ-सौ बार न्यौछावर हूँ।

10. कृपा निधान-रामदत्त जी महाराज

मेरे दीक्षा गुरूदेव के पर्दा फरमाने के बाद श्री रामदत्त जी मिश्रा 'उवैसी' गुरूपद पर प्रतिष्ठित हुए। आपने मेरा आरम्भिक असमंजस किस तरह साफ किया, इसका उल्लेख किया जा चुका है। मेरे लिए तो आप भी कृपा के सागर हैं। आपने ही मुझे दिखाया कि आप से लेकर हज़रत सुहाब खाँ साहब र.ह. तक उवैसिया गुरू परंपरा की एक ही दिव्य ज्योति आलोकित है। आप भी मुझे ऊपर के मुकामों तक ले गए; मुझे गुरूदेव की समाधि से सम्वाद की प्रेरणा व क्षमता देते रहे; अनेक बार मुझ पर फैज़ फरमाया, रूहानी प्रगति के लिए मुझे चिल्ले पर बिठाया; नवरात्रा में सवा लाख जाप का एक और अनुष्ठान कराया; झाँसी व रामपुर शरीफ की यादगार यात्राएँ कराई और वह नजर प्रदान करी कि मैं आप द्वारा झाँसी में आयोजित भण्डारे का रूहानी मंजर यहाँ अजमेर के आश्रम में बैठे-बैठे देख सका। आप दरिया दिल हैं और रूहानी दौलत तकसीम करने के लिए प्रतिपल तत्पर रहते हैं। आपने भी गले लगा कर मुझे बड़भागी सिद्ध किया है।

झाँसी यात्रा

गुरुदेव का पहला भण्डारा ठाठ-बाट से सम्पन्न हुआ। शुकराना अदा करने के लिये गुरू महाराज ने बड़ी सरकार के दरबार (झाँसी) में हाज़िरी देने का निश्चय किया। गुरूदत्त जी ने मुझे भी ले चलने का आग्रह किया जिसे गुरू महाराज ने बहुत आल्हादित मन से स्वीकृति दी। फिर गुरु भैय्या किसी कारणवश नहीं जा सके। मैं, रमेश जी के साथ ट्रेन से झाँसी पहुंच गया और गुरुदेव वहाँ सड़क मार्ग से गए।

शाम के वक्त मैने हज़रत निजामुल हक र.ह. 'उवैसी' कलंदर की मज़ार पर हाज़िरी दी। जब ध्यान लगा तो आपने फरमाया-तुम्हारा खाता हमारे पास नहीं है; उधर (हाफिज साहब) जाओ। रूहानियत टपकती रही, दादा हुजूर थपकाते रहे, मस्ती चढ़ती गई और हाज़िरी कबूल हुई। फिर हाफिज मोहम्मद इब्राहीम र.अ. साहब के रोज़े पर मत्था टेका। वहाँ आपने बहुत ही स्नेह सिक्त लहजे में कहा - डेढ़ सौ साल बाद मिले हो.... चलो बैठो। खुशी के मारे मेरे तो पाँव तले जमीन थरथराने लगी, आँखें भीग गई, रोमांचित देह में बेहोशी ही उतरने लगी। मै वहीं उनके चरणों में बैठ गया। वहाँ वात्सल्य भाव बरसता रहा, कोई गोद में बिठाए हुए है ऐसा महसूस होता रहा। फिर आदेश मिला कि अब उधर (दादा हुजूर) जाकर इबादत करो। दादा साहब के रोजे पर मैं लगभग दो घण्टे बैठा-कभी गुम हो जाता, कभी बेहोश होता, कभी रूहानी दुनिया में संचरण करता और कभी दादा साहब का फैज़ महसूस करता। बाहर श्री कादिर भाई नाश्ते के लिए मेरा इंतजार कर रहे थे। शायद इसीलिए उक्त सिलसिला थम गया और मैं बाहर आ गया। प्रीत से सरोबार नाश्ता हुआ, फिर दुलार भरे आग्रह के साथ हमें भोजन कराया गया। आधी रात के समय गुरु महाराज वहाँ पहुँचे तब मैं इबादत में मशगूल था।

सुबह नाश्ते के वक्त पुनः मालिक का फैज़ हुआ। अपना नाश्ता दोनों कलन्दरों को अर्पित किया। प्लेट खाली हुई तो मन ने कहा-अब मैं तो भूखा ही रह गया। तभी नाश्ते का धामा लिए हुए उधर से सर्वेश आगे निकल गया। फिर वह लौटकर वापस आया और मेरी प्लेट में नाश्ता रख गया। मैं अन्तर्मन में मुस्कराया, शुक्रिया अदा किया और मस्ती में गुम हो गया। इसके बाद चाय का दौर चला। एक कप चाय पीने के बाद मन में वही बात उठी-आधा-आधा कप चाय तो दादा हुजूर एवं हाफ़िज साहब की थी। मेरी चाय कहाँ है? एक मिनट

बाद ही रमेश जी आए और आधा कप चाय दे गए। मतलब यह कि वहाँ मामला हाजिर नाजिर का था। पिताजी के रहते मैं एक बार भी झाँसी नहीं जा सका था। मेरा सुयोग राम जी महाराज के साथ बना और उनकी कृपा से वहाँ हर पल मेरे साथ रूहानी गुजरान हो रहा था। नाश्ते के बाद मैं दादा साहब के रोज़े में बैठ गया। हुजूर भी वहाँ आ गये-वे पैताने की तरफ बैठे थे और मैं दाहिनी ओर बीच में बैठा था। धीरे-धीरे समाधि से ललाई युक्त पीली रोशनी ऊपर उठी। तत्पश्चात वह रोशनी गुरू महाराज रामदत्त जी में समाती गई फिर इसी तरह वैसे ही आलोक की मोटी धारा राम जी महाराज से निकल कर दादा हुजूर की समाधि में लीन होती गई। यह सिलसिला कितनी देर कायम रहा, मुझे नहीं पता। हां, इतना अवश्य है कि वह पीली प्रकाश धारा नीली झाई युक्त श्वेतरंग में बदल रही थी। जहाँ गुरू कृपा से मुझे समझाया गया कि रामजी एवं दादा हुजूर तक रूहानी मामला एक ही है। रामजी की कृपा में दादा साहब का आशीर्वाद भी निहित है। इसलिए मैं एकनिष्ठ भाव से रामजी की ही सेवा करता रहूँ। अन्य साधकों के लिए भी यही सत्य है। जो बाबा साहब एवं गुरुदेव हज़रत हरप्रसाद जी के मुरीद रहे हैं उन्हें भी इस रूहानी गुजरान से प्रतिपादित होने वाली सच्चाई को सिर-माथे पर रखना चाहिये। गुरू को सांसारिक रिश्तों में बांध कर नहीं देखना चाहिए, उसमें केवल गुरूतत्व के दर्शन करो अन्यथा स्वयं अपना ही नुकसान करोगे। मैने भी वहाँ समझ लिया कि अब आप राम भैय्या नहीं, हुजूर हैं।

तदन्तर हाफ़िज साहब के दरबार में हाजिरी दी-वहाँ लालिमा युक्त चमकदार प्रकाश था, विलक्षण शांति थी, रूहानी माहौल स्नेह से भीगा-भीगा था। आपने रहमत फरमाई कि तुम्हारे बेटे की नौकरी दस दिन में लग जाएगी। ऐसा ही हुआ; दसवें दिन उसकी नियुक्ति हो गई।

भोजन के बाद दोपहर के समय गुरू महाराज, दादा हुज़ूर के रोजे के बाहर गद्दी लगा कर बैठ गए। मैं आपके बिलकुल सामने बैठा था। हम दोनों के बीच हवा में रूहानी जलवे गुजरते रहे। आपकी दया-दृष्टि बार-बार मुझ पर पड़ रही थी, मैं रोमांचित होता जा रहा था। आपमें गुरूदेव का अक्स कौंध रहा था। अपनी नज़र के फैज़ से आप क्या क्या करते रहे, नहीं पता। मैं तो उस वक्त अलमस्त था। अपनी सांसारिकता से बेखबर था। कोई डेढ घण्टे ऐसा ही चलता रहा। आप पास में बैठे लोगों से बात भी कर रहे थे, आध्यात्मिक चर्चा भी कर रहे थे और मुझ पर भी लगातार नज़र जमाए हुए थे।

अगले दिन सुबह महफिल के दौरान मुझ पर हाफिज़ साहब का ही सुरूर चढ़ा रहा। मैं दादा हुजूर की समाधि पर नज़राना पेश करना चाहता था किन्तु आपने हाफ़िज साहब के रोज़े में जाने का आदेश दिया। फिर अनिच्छा पूर्वक झाँसी से लौटा। दादा हुजूर एवं हाफ़िज साहब की मूरत कई दिनों तक ख्याल में चमकती रही। मेरे कृपा-निधान गुरू महाराज की असीम कृपा इस तरह मुझ पर झाँसी में प्रवाहित हुई।

रामपुर की जियारत

झाँसी यात्रा से लौटने के बाद हुज़ूर के रोजे में हज़रत गुल मोहम्मद खाँ र.अ. के दर्शन हुए और आपकी दरगाह के भी दीदार नसीब हुए। इधर समय गुजरता गया। भीतर का मामला आगे बढ़ता रहा। गुरू महाराज ने दसों बार गले लगाया, सिर व पीठ थपथपाई। गुरूदेव के समाधि कक्ष में अक्सर आप रूहानी तौर पर आ जाते। समाधि के साथ होने वाली मेरी बातचीत को आप अपने कक्ष में बता देते। कभी वहीं पर कहते- भीतर जाओ, आपका इंतजार हो रहा है।

अब रामपुर यात्रा का अवसर आया। इस बार भी मेरे लिए गुरू भैय्या निमित कारण बने। गुरू महाराज ने स्वीकृति दे दी। मुझे आभास हो रहा था कि मेरे लिए रामपुर से बुलावा आया है। प्रस्थान के दिन वाली रात दिल्ली में चाची जी (महेन्द्र चाचा की धर्मपत्नी) के घर बिताई। दूसरे दिन सुबह वहाँ सत्संग शुरु हुआ। मुझ पर आपने नजर जमाई और बोले-शिवजी भाईसाहब! इन्हें कुछ बताईये। मैं सकुचाया तो नज़र भर कर इशारा किया। फिर मैं क्या बोला, उपस्थित लोगों ने क्या सवाल किये, मेरे क्या जवाब थे; कुछ भी याद नहीं। आप बैठे-बैठे मुस्कराए जा रहे थे। यह होता है गुरू का फैज़। यों सब कुछ सामान्य दिख रहा था; केवल मैं ही भीतर से असामान्य था। यहाँ से गुरू साहब की नजर शुरू हुई जो लौटती बार रमण भाई के घर से प्रस्थान के वक्त तक कायम रही।

रामपुर में जब हज़रत सुहाब खाँ र.ह. साहब की दरगाह में फूल पेश करके फाता लगा रहे थे तब मैं हुजूर के पास ही खड़ा था। उस वक्त रूहानी तौर पर आपने मुझे अपने घेरे में ले रखा था। फिर अल्लानूर खाँ साहब के दरबार में झलमलाता हुआ ज्योतिपुंज और रूहानी आदेश-अपने गुरू के चरणों में प्रणाम करो। सुभानशाह साहब के यहाँ अद्भुत ठाठ थे। वहाँ पाँव रखते ही लगा जैसे आपने गले लगाने के लिए बाँहें बढ़ा दी हैं। वहाँ मैं गुरू महाराज के एकदम पीछे बैठा था। आँखें खुली थी और मैंने गुरू महाराज के शरीर को नीली रोशनी के अनेक घेरों में चक्कर लगाते हुए समाधि की तरफ बढ़ते हुए देखा। वहाँ समाधि में भी वैसे ही प्रकाश का ऊंचा स्तूप घूम रहा था। फिर समाधि से आवाज आई-मुझे देखो; मैं चारों तरफ हूँ; यहाँ भी हूँ, वहाँ भी हूँ। फिर मैं गुरू महाराज के रौशन शरीर के आर-पार देखने लगा। आँखें पूरी तरह खुली हुईं थी। वह कक्ष उसी प्रकाश से भर गया। वह प्रकाश महाशून्य था। वहाँ कुछ भी नहीं था। न गुरु

महाराज, न ही समाधि। मुझे वहाँ हज़रत गुल मोहम्मद खाँ साहब की उपस्थिती का भी एहसास होता रहा था। उस दिन मुझे मेरे कृपानिधान ने रूहानियत का मानो तीसरी बार वरदान दिया था। खुली आँखों से दिव्य ज्योति के दर्शन। तदनन्तर हज़रत गुल मोहम्मद खाँ साहब की दरगाह को देखते ही याद आया कि बाबा साहेब के आस्ताने पर यही स्थान दिखा था और आवाज आई थी-गुल खाँ साहब। वहाँ भी समाधि कक्ष रूहानी प्रकाश से भरा हुआ था। बाकी सब कुछ लुप्त था।

बाबा लक्ष्मण दास की दरगाह में प्रवेश करते ही जैसे फैज़ चढ़ा। समाधि घूमने लगी। घूमते हुए ऊपर उठती गई। फिर गहराई में उतरती चली गई। ऐसा लगा कि कोई बैठा हुआ है; चारों तरफ देख रहा है। समाधि कक्ष के बाहर आने पर भी नशा चढ़ा रहा, ध्यान भीतर ही बंधा हुआ रहा जैसे गाय को खूँटे से बांध दिया हो। मन में तड़प उठी कि वहीं रह जाऊँ लेकिन उठना ही पड़ा।

इस तरह रामपुर यात्रा के रूहानी गुजरान से मैं यही समझा कि सुहाब खाँ साहब से गुरू महाराज तक एक ही गुरू तत्त्व है, एक ही दिव्यालोक है, एक ही जलवा है। अपने गुरू महाराज को खुश रखो तो ऊपर भी सारे बुजुर्ग प्रसन्न हैं।

रामपुर से हम लोग पानीपत आकर रमण भाई के घर ठहरे। वहाँ छक कर नाश्ता, जमकर भोजन और चैन की नींद-यही आलम था। वहाँ हम लगभग चालीस घण्टे ठहरे। दूसरे दिन शाम को कलन्दर बू अली शाह की दरगाह में मत्था टेका। वहाँ कोई गुजरान नहीं हुआ। समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों हुआ।

वहाँ से लौटकर घर आए। मैं इबादत में बैठ गया और मालिक की कृपा से ऐसा ध्यानस्थ हुआ कि भीतर बिजलियाँ कौंधने लगीं-कलन्दर साहब की सुनहरी मज़ार पर सोने के काम वाली गहरी गुलाबी मखमली चादर चढ़ी हुई थी। आस-पास

सुनहरे महलात थे। दिव्यलोक जैसा माहौल था, खुशबू थी, बहुत मीठा संगीत था, सुरीले कलाम थे, रूहों का जैसे मेला था। इस तरह मैं अपनी मौज में मग्न था। पता नहीं कब किसी ने आकर किस तरह कुछ कहा कि मैं दनदनाते हुए जैसे नीचे गिरा....सुना कि रामजी महाराज याद कर रहे हैं। वस्तुतः भोजन का वक्त हो गया था। खैर, मालिक की ऐसी ही मर्जी थी। दूसरे दिन सुबह रमण भाई के मंदिर में जाने का सौभाग्य मिला-बहुत जाग्रत लगा वह पूजा घर। वहाँ रूहानियत धड़क रही थी। मेरे दीक्षा गुरू (जो रमण जी के भी मुर्शिद हैं) की भीनी-भीनी महक वहाँ व्याप्त थी। मैने रमण भाई व उनके परिवार में गुरूदेव के प्रति एकनिष्ठ समर्पण भाव देखा। आतिथ्य वहाँ बुलन्दी पर था और बड़ों के प्रति सम्मान का भाव उछालें मार रहा था। वे वाकई लाजवाब हैं। कुल मिला कर रामपुर यात्रा ने मुझ पर गुरू महाराज की विशिष्ट कृपा को उजागर किया।

और फिर आश्रम में बरसी रहमत!

रामजी महाराज ने 16 मई, 2010 को पुनः झाँसी की यात्रा की। उनके साथ लगभग डेढ़ सौ साधक-साधिकाएँ भी गये। मुझे यहीं आश्रम में ठहरने का आदेश मिला। सत्रह मई को ब्रह्म मुहूर्त में दो बजे गुरू महाराज ने आश्रम से प्रस्थान किया। जाते-जाते मेरे कंधे पर हाथ रखते हए बोले-आप यहीं पर झाँसी के नज़ारे देखना। मैने सिर झुका कर आपकी इस कृपा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की।

सत्रह मई को सायंकाल तक आप झाँसी पहुँच गये। रात को महफिल थी। यहाँ साढ़े दस बजे के बाद मालिक की दया से मेरी सुरत चढ़ी। अनेक बुजुर्गों के साथ पिताजी और रामजी महाराज को दादा हुज़ूर की दरगाह में देखा। महफिल की रौनक प्रत्यक्ष हुई, कव्वाली की धुन भीतर गूंजने लगी। गफलत बढ़ी कि मैं कहाँ

हूँ? आनन्द की लहरों में डूबता उबरता रहा। रात को साढ़े तीन बजे लेटा। फिर दूसरे दिन हाफिज़ मोहम्मद इब्राहीम साहब र.ह. का भण्डारा था। सायंकाल चादर की रस्म हुई। आश्रम में भी हमें भोजन में भण्डारे की प्रसादी जैसा आनन्द मिला। फिर रात को वहाँ महफिल हुई और यहाँ ध्यानावस्था में मैं पुनः हुजूर की शरण में पहुँच गया। उस रात मैं पाँच घण्टे 'गुम' रहा। ध्यान उतरा तो बस एक ही स्मृति थी कि मैं झाँसी में राम जी महाराज के पास बैठा था। 'गुम' हो जाना ध्यान की वह दशा है जिसमें साधक का शरीर निश्चेष्ट पड़ा रहता है और 'मैं हूँ' की अनुभूति मिट जाती है। ध्यान उतरने पर साधक एक शब्द भी नहीं बोल पाता है। यह अनिर्वचनीय आनन्द की अवस्था होती है। गुरू महाराज की रहमत से उस रात मैंने इसी आनन्द का आस्वादन किया। उन्हें शत्-शत् प्रणाम!
सच मानिए, मैं एक मामूली साधक हूँ। फिर भी, मेरे दीक्षा गुरू और वर्तमान गुरू महाराज ने मुझ पर इतना फैज़ बरसाया, यह उनकी फकीरी उदारता का ही प्रमाण है। महाकवि सूरदास जी ने भी लिखा है कि-

अविगत गति कछु कहत् न जाई।
जाकी कृपा पंगु गिरी लंघे, अंधे को सब कुछ दरसाई।

परमात्मा की महिमा यानी उदारता की कोई सीमा नही; उनकी कृपा से लंगड़ा मनुष्य पर्वत को पार कर लेता है और अंधे को सब कुछ दिखने लगता है। मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ है। गुरू भी परमात्म होता है और परमात्म रुप सद्गुरू ने मुझ पर ऐसी महान कृपा की है। आपको हजार-हजार बार सर्वांग प्रणाम!

11. यही सच है

अभी तक मैने जो कुछ भी लिखा है उसके लिए मात्र एक शब्द पर्याप्त है, गुरू-कृपा। संत कवि कबीर दास जी ने इसे बहुत सुन्दर शब्दों में लिखा है:-

जब मैं था, तब हरि नहीं, अब हरि हैं, मैं नाहि।
जग अंधियारा मिटि गया, दीपक देख्या माहिं॥

अर्थात् जब तक मुझे मेरे वजूद का अहंकार था तब तक मुझे भगवान के दर्शन नहीं हुए; उस परमात्मा के जो मेरे भीतर ही बैठा था। किन्तु उसे देखने की मुझे फुर्सत ही नहीं थी। मैं तो हर वक्त स्वयं के विषय में, अपने परिवार के विषय में और धन-दौलत के सम्बन्ध में ही सोचता रहता था। फिर ऐसी गुरू कृपा हुई कि 'मैं' का विचार मिट गया। ऐसा होते ही अन्तर्मन में प्रभु के दर्शन हो गए। प्रभु-दर्शन के लिए मुझे कहीं भी नहीं जाना पड़ा। कितने आश्चर्य की बात है। जिसे दुनिया मंदिर, मस्जिद और तीर्थों में खोजती थी वह मेरे अपने भीतर ही मिल गया। मेरा समस्त सांसारिक अज्ञान दूर हो गया और भीतर ज्ञान का उजाला भर गया। अज्ञान यानी सांसारिक सुखों को सच समझना: ज्ञान अर्थात यह मानना कि परमात्मा ही सच है और उसी की कृपा से बेड़ा पार होगा।
अब आप यह कीजिए कि 'हरि' की जगह 'गुरू' को रख दीजिए: बाकी सारी बात वैसी ही रहने दीजिए। यही एक मात्र सत्य है। गुरू तत्व एवं परमात्मा एक ही हैं। जब यह बात मन में उतर जाएगी तो बार-बार भ्रमित होना मिट जाएगा।
लेकिन कठिनाई यही है कि ऐसा बड़ी मुश्किल से होता है-मुंह से कहना अलग बात है और अन्तर्मन में इसे जड़ीभूत कर लेना पृथक बात है। यह भी गुरू-कृपा

के बिना नहीं होता। गुरु-कृपा समर्पण से मिलती है। समर्पण विश्वास पर पल्लवित होता है। विश्वास 'मैं' से दूर रहने पर जमता है। 'मैं' ज्ञान-भक्ति प्रेम से दूर होता है। इसका सबसे सरल उपाय है-बच्चे जैसे अबोध हो जाओ; वह अपने पिता की गोद में स्वयं को बादशाह समझता है; अन्य बातें वह सोचता ही नहीं है। आप भी अपने सद्गुरू की गोद में उतने ही अबोध बन कर बैठ जाओ; फिर निश्चिंत रहो।

मुझे अपने शास्त्रीय ज्ञान पर बहुत गर्व था। सद्गुरू ने पहले उसे साफ किया; फिर 'कृपा' प्रवाहित की; अन्तर्दर्शन कराए और फिर साधना के पथ पर आगे चलने के लिए छोड़ दिया। दोराहे, चौराहे पर सामने आकर सही रास्ता बता देते, थकने नहीं देते, बैठने नहीं देते व हरपल अपनी नज़र रखते। अभी मैं जहाँ तक भी पहुँच सका हूँ, आपकी कृपा से ही चल पाया हूँ।

इस दौरान एक और बात का विशेष ध्यान रखना है-गुरू निंदा और गुरू भाइयों की निंदा में सहभागी मत बनिए। गुरू के किसी भी काम पर प्रतिकूल टिप्पणी मत कीजिए। यथा सम्भव अपने भीतर भी चुप रहिए अर्थात् मन में भी प्रतिकूल आलोचनाएँ मत कीजिए। गुरू-भाईयों से प्रतिस्पर्धा मत कीजिए। यह मत सोचिए कि मालिक ने जैसा अमुक के साथ किया वैसा आपके साथ क्यों नहीं किया।

सावधान रहिए - सद्गुरू चुपचाप, अनजाने ही परीक्षा लेता रहता है; आपको कसौटी पर कसता रहता है। थोड़ी सी ही असावधानी आपको फेल कर देगी और आपको पता भी नहीं चलेगा। मैंने शुरू में गुरूदेव को लिखित में कहा था कि मैं अध्यात्म को 'प्रेक्टिकली' करने के लिए उनके पास आया हूँ। इसके लगभग साल भर बाद एक दिन आप बोले-शिवजी! आपको आने-जाने में दिक्कत होती है; गाड़ी खरीद लो; सोलह हजार रूपये मैं दे दूंगा। मैने हाथ जोड़ कर कहा-

आपकी गाँठ में जो कोहिनूर हीरा बंधा हुआ है, बस उसकी एक झलक दिखा दें; दाल-रोटी, मुझे आराम से मिल रही है। थोड़े दिनों बाद पुनः बोले कि बीस हजार रुपये मैं देता हूँ, गाड़ी खरीद लो। मैने पहले वाला जवाब ही दोहरा दिया। तीन-चार माह गुजर गए। एक दिन रमण भाई भी बैठे हुए थे। तब फिर वही बात-शिवजी, मैं सत्तर हजार रूपये देता हूँ, अब गाड़ी खरीद लो। रमण भाई बोले कि वाह मालिक! क्या कृपा है आपकी। मैने इस बार विनयपूर्वक कहा-मैं हीरा चाहता हूँ और आप कंचे देकर मुझे बहलाना चाहते हैं। इस तरह तीन बार आपने यह जानना चाहा कि मेरे मन में धन-दौलत का लालच है या नहीं। शोध-संस्थान में पुस्तकें खरीदने के लिए आपने दस हजार रूपये मुझे दिये कि अपने पास रखो और अच्छी पुस्तकें खरीदते रहना। मैंने वे रुपये आपके तख्त पर गद्दे के नीचे रखते हुए कहा-पुस्तकों के मूल्य की अदायगी रमेश चाचाजी यहाँ से लेकर करते रहेंगे। उस वक्त चाचा जी भी मेरे साथ बैठे थे। मैंने पैसे को हाथ नहीं लगाया।

फिर दूसरी तरह की परीक्षाएँ होती रहीं। मैं सदैव सावधान रहता और गुरुदेव की शाबाशी अर्जित करता रहा। तो बात इतनी सी है कि आप भी ऐसी सावधानी बरतें। भीतर होने वाले गुजरानों को अपनी मेहनत का फल नहीं समझें; उसे मालिक का फैज़ मानकर शुक्रिया अदा करते रहें। ऐसी अनुभूतियों पर इतराएँ नहीं, चुप रहें। बोलकर मैंने भी नुकसान उठाया है। मुझे रजनीकान्त चाचा जी ने चुप किया। मैं उनका तहे दिल से शुक्रगुजार हूँ। फिर रही सही कसर गुरु महाराज रामदत्त जी ने पूरी कर दी: अपनी नज़र से आपने मेरे मुँह पर ताला लगा दिया। अब यह शब्दांकन क्यों कराया हैं, वे ही जाने।

अब अहंकार से बचें। भीतर जब थोड़ी दौलत एकत्र हो जाती है तो साधक फूल जाता है। यहीं वह स्वयं के पैरों पर कुल्हाड़ी मार लेता है।

मालिक की दी हुई दौलत पर तुम्हारा घमण्ड कैसा?
ज्यों-ज्यों आप आगे बढ़ेंगे, पहले की अनुभूतियाँ सुस्त पड़ती जाएँगी। उस वक्त ऐसा नहीं सोचें कि मालिक ने अपनी कृपा रोक ली है। पहली सीढ़ी को छोड़ेंगे तभी तो दूसरी सीढ़ी पर चढ़ेंगे।
मालिक की सेवा पर कभी भी अपना एकाधिकार मत समझिए। साथ वालों को भी पूरा अवसर दीजिए। याद रखें, मालिक से आपकी कोई भी हरकत नहीं छिपती।
बातें इधर से उधर मत कीजिए; इससे साधक की रूहानी प्रगति धीमी पड़ जाती है व अंतत: ठहर जाती है।
हमारा यह सहजयोग बहुत सरल मार्ग है। आपका असद् स्वभाव ही इसे स्वयं के लिए कठिन कर देता है। अत: इबादत के साथ-साथ आप अपने स्वभाव पर भी कड़ी नजर रखें।

मैं अब अपने सद्गुरू की शरण में दस वर्ष रहने का निचोड़ प्रस्तुत करता हूँ
1. नाम दीक्षा यानी गुरू कृपा
2. इबादत के लिए नियमित बैठना यानी गुरू कृपा
3. दुनियावी और रूहानी प्रगति यानी गुरू कृपा
4. बड़ी सरकारों के दरबार में हाज़िरी यानी गुरू कृपा
5. आश्रम व दरगाह में सेवा का अवसर मिलना यानी गुरू कृपा
6. आंतरिक प्रगति यानी गुरू कृपा
7. साधक का साहिबे हाल तक पहुँचना यानी गुरू कृपा
8. आप जो सुकून भरा जीवन जी रहे हैं वह भी गुरू कृपा ही है।
9. साधक की हर साँस गुरू कृपा है।

ऐसी गुरूकृपा को मेरे श्वास-प्रश्वास का सतत् प्रणाम।

12. परिचय - श्री शिव शर्मा

राजकीय स्नातकोत्तर महाविधालय, देवली के हिन्दी विभाग से सेवानिवृत्त। आठवें, नौवें दशक के दौरान विविध पत्र पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। दैनिक न्याय, आधुनिक राजस्थान व जैन चिंतन (त्रैमासिक) में सम्पादन कार्य। इतवारी एवं राजस्थान पत्रिका में स्तम्भ लेखन।

अजमेर के सूफी संत हज़रत हारप्रसाद मिश्रा से दीक्षा के बाद ध्यान साधना में उतरोत्तर प्रवृत्ति। अभी तक 16 पुस्तकें प्रकाशित – अजमेर इतिहास और पर्यटन, पुष्कर: अध्यात्म एवं इतिहास, दशानन चरित, हमारे पूज्य गुरुदेव, कर्मण्येवाधिकारस्ते, सूफी संत और उनकी कथाएँ, गीता पाप मोचनी, गीता में जीवन की पूर्णता, सद्गुरु शरणम, मोक्ष का सत्य, अवतार का रहस्य, श्रीकृष्ण से मुलाक़ात, एक श्लोक की गीता, संत श्री सेवाराम, नारी मुक्ति, गीता; 150 प्रश्नोत्तर, श्रीराम चरित।

पता : शिव शर्मा - 217, प्रगति नगर कोटड़ा, अजमेर।

मो. : (+91) 9252270562 , www.geetaandadhyatm.com